वर्ष ७ | शाका सं० १८८३ जौलाई अगस्त सन् १९६१ | तरङ्ग ५,६

स्तुति

राधास्वामी गुरु दयाल, बल बल जाऊं शरण पर।
मुझको किया निहाल, दीन दुखी अति जान कर ॥१॥
चरण कंवल की ओट, आन गही जब गुरु की।
मिटे करम सब खोट, धन्य धन्य गुरु देव तुम ॥२॥
तुम तो चन्द्र स्वरूप हो, मैं हूं चित्त चकोर सम।
प्रभो ! तुम ब्रह्म के कूप हो, मैं हूँ घट सदृश ॥३॥
सूर उगा बिगसे कमल, तिमिर विकार की गम नहीं।
नहीं अज्ञान का भय कोई, तुम्हरी दया अपार से ॥४॥
राधास्वामी परम कृपाल, नर शरीर गुरु धार कर।
साँचे दीन दयाल, शब्द योग की रीति दी ॥५॥

बताऊंगा तुमको राज़ हस्ती, नई किताबें पढ़ा पढ़ा कर।
जताऊंगा नुकतये हकाकत, कहानियों को सुना सुना कर॥
कहां कलम के फूल में बू, कहाँ तरावट है नक्शे गुल में।
दिमाग ताजा करूंगा इन्हें, सखुन से कागज बसा बसा कर॥
मेरे कलम में है सहर व जादू, मेरे बयां में भरा है अफसूं।
तुम्हें करूंगा मैं बसमें अपने, निराले मंतर जगा जगाकर॥
पिलाया पीरे मुगां ने उल्फत, का जाम सरशार होरहा हूँ।
कदीम मयको जदीद बोतलमें, दूँगा हरदम सजा सजाकर॥
चमन है सैराब दिलका अपने, कलम ने गुलचीं के फर्ज सीखे।
लगाये वज्मे सखुन में गुलदस्त, हाये मानी सजा सजाकर॥
है तुमको क्यों वेद से कुदूरत, पुराणों से तुमको क्यों है नफरत
मैं इनका शैदा बनाके छोड़ूंगा, सिरें अकबर जता जताकर॥
न फरेब है रोशनी नई यह, कि इसकी दो दिन की चांदनी है
तुम्हें सदाकत का नूर दूंगा, अंधेरे का डर दिखा दिखाकर॥
पढ़ो पढ़ो गौर से पढ़ो, है अजब दिलचस्प यह कहानी।
हंसा के दिलखुश करेगी, आठ आठ आंसू रुला रुला कर॥

कौन कहता है कि पवित्र वेद आदि के असभ्य लोगों की वाणी है। यह अज्ञान की वार्तालाप है। कौन कहता है कि शास्त्रों की बातें सिद्धान्त रहित हैं। यह व्यर्थ की बच्चों की बातें हैं। कौन कहता है कि पुराण गप हैं। यह अनार्यों की अनसमझी की लंतरानी है।

अफसोस! समय नहीं है। मैं अधिक आयु बीतने पर गुरु की सेवा में पहुँचा। क्या अच्छा होता कि मुझे बचपन ही से राधास्वामी मत से सम्बन्ध होता ताकि मैं साधन और अभ्यास कीश्रेणियां से नियम पूर्वक गुजरता हुआ वेदों के दावे, शास्त्रों के अभिप्राय, पुराणों का ध्येय, तन्त्र ग्रन्थों के स्पष्टी-

करण और योग विद्या की क्रियाओं को क्रियात्मक (अमली) ढंग पर स्वयं अपने अमली जीवन से लोगों को दिखा कर ऋषियों के ग्रन्थों, बौद्धों की शिक्षा तांत्रिकों के सिद्धान्त और संतों की सचाई का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करता हुआ दुनियां को दिखा देता कि हिन्दू धर्म किस प्रकार का पूर्ण और विश्व व्यापक प्राकृतिक नियम है. मगर अब क्या हो सकता है।

आगे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करे, चिड़िया चुग गईं खेत॥

पचपन वर्ष की आयु हो गई। शरीर इस योग्य नहीं रहा कि साधन अवस्था के परिश्रम को सह सके। फिर भी हुजूर महाराज की कृपा का हजार हजार धन्यवाद है। जो कुछ शिक्षा मिली वह इस जीवन और इस जीवन के वर्तमान मन्डल के लिये काफी है। चित्त में शान्ति है। न अब सिद्धि शक्ति का विचार सताता है न मान और उन्नति की लालसा ही चित्त में बाकी है। जो कुछ समय मिलता है गुरु के ध्यान और ज्ञान में व्यतीत होता है। आनन्द से दिन गुजरते हैं। 'न ऊधो का देना न माधो का लेना।'

न आता हूँ न जाता हूँ न मरता हूँ न जीता हूं।
सुबूये बायदे वहदत खुशी से रोज पीता हूँ॥
सरूरे ऐश से दिन रात दिल को काम रहता है।
न उकवे की तमन्ना है न गम दुनियां के सहता हूँ॥

मगर यह शरीर हिन्दू के घर में पैदा हुआ। हिन्दूपन के संस्कार अब तक मिटने पर नहीं आये। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे हिन्दूपत देता ने सबसे प्रथम देश प्रेम का सबक सिखाया। सबको भलाई में अपनी भलाई समझो। वह बिजली की कड़क की आवाज अब तक कानों में निरन्तर

होने वाले शब्द की तरह हर समय गूंजती रहती है और स्मरण कराती रहती है कि जब तक हृदय में जातियता, धर्म, जातीय रहन सहन का प्रभाव नाम को भी बाकी है तब तक जाति सेवा से बेसुध रहना गलती है। कृष्ण भगवान का उपदेश है—"अपना धर्म दूसरों के धर्म से कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है।" इस दृष्टि से जिस तरह होता है बुरे भले ढंग से हिन्दू जाति की सेवा का दम भरता रहा हूँ। और नहीं तो हाथ में लेखनी लेकर अपने ढङ्ग पर ऋषियों, बुद्धों और सन्तों का सन्देश लेख द्वारा इच्छुक हिन्दुओं को सुनाता रहता हूँ। कार्य करना और कार्य करते रहना अपना कर्तव्य है। सफलता और असफलता का सम्बन्ध किसी परम शक्ति से सम्बन्धित है जिसका फैसला उसने अपने ही हाथों में ले रक्खा है।

ऊँची और भयानक चट्टान की चोटी पर कुछ असावधान लोग सो रहे थे। उसके नीचे गहरी खाई थी। सम्भव था सोने वाले अङ्गड़ाई लेकर करवट बदलते ही फिसल कर नीचे गिर जाते। हड्डी पसली टूट जाती। न जगाने का अवसर था न चौकन्ना करने का समय था। एक जीवित बलवान पुरुष ने सबको एक रस्से से बाँधकर अपनी ओर खेंचने का प्रबन्ध किया। खेंचतान की हालत को कौन पसन्द करता है। वह हाथों को मलते हुये खिचे। होश आया। मरने से बच गये। उसको धन्यवाद दिया। वह व्यक्ति अपनी राह चला गया। बचे हुये मूर्खों ने उस समय के आवश्यक सद्व्यवहार को नहीं समझा। व्यर्थ दूसरों को रस्से में बांधने की जो उन्हें सूझी तो उस साधन और अभ्यास का दम भरने लगे। यह ख्याल नहीं नहीं आया कि हर काम अवसर देख कर होता है।

धर्म कर्म समय की आवश्यकता पर निर्भर होता है। दिन के काम रात के काम से भिन्न होते हैं। जो वस्तु किसी विशेष

समय के लिये उचित है वह दूसरे समय अनुचित और अनावश्यक हो जाती है। दीपक रात के समय जलाया जाता है। दिन को कोई बुद्धिमान नहीं जलाया करता।

बल गया। निर्बलता आगई। जो योग्यता कि जाति के सुधार में लगती इसका दोष पूर्ण ढङ्ग में प्रयोग होने लगा। वह कुंये के मेंढकों की तरह अपने ही बीच टर टर करते हुये एक दूसरे के प्राणों के शत्रु और रक्त के प्यासे बन गये।

मैंने यह दशा देखी। पुराणों की शिक्षा का ढांचा उनकी मनोहर कथाओं का क्रम दिखाना प्रारम्भ किया। अनगिनत पुस्तकें लिख डालीं। विज्ञान रामायण, विज्ञान कृष्णायन, विज्ञान वशिष्टायन विज्ञान बौद्धायन और विज्ञान संतायन आदि के रूपों में या शक मुनि के निरोक्त की सहायता से असलियत के तत्व अर्थ के दिखाने का प्रयत्न किया। यह नहीं कहा जा सकता कि मेरा परिश्रम व्यर्थ गया। हां, आत्मज्ञान के प्रेमी संसार में थोड़े होते हैं। जिन्होंने समझा, समझा। जिन्होंने नहीं समझा, नहीं समझा। मैंने देखा कि युवकों को उपन्यास पढ़ने का शौक अधिक होता है, इधर ध्यान देने की आवश्यकता हुई। मैं मानता हूँ कि मैं उपन्यास लेखक नहीं हूं। मैं यह भी जानता हूँ कि यह उपन्यास कहलाने का अधिकार नहीं रखते। मैंने केवल कहानी कहने का कार्य अपने ऊपर लिया। प्राचीन कहानियों को अपनी वर्णन शैली में लिखना प्रारम्भ किया। पाठक बड़े शौक से इधर आकर्षित हुये। मेरी कहानियों ने जो एक के बाद दूसरी पाँच पांच छः छः हजार के करीब प्रकाशित हुईं, उर्दू भाषी जनता के रुझान को अपनी ओर खींचा। इनमें से कुछ के नाम यह हैं—

१—शाही लकड़हारा। २—शाही भूत। ३—शाही भिखारी। ४—शाही पतिपरायण। ५—शाही डाकू। ६—शाही जोगी।

नोट १—यह पुस्तकें हमारे यहाँ शिव कार्यालय से मिलती हैं।

इसी सिल सिले में इस शाही जादूगरनी को भी समझना चाहिये। उपरोक्त कहानियों में से कोई पौलीटिकल है, कोई भक्तिभाव से सम्बन्ध रखती है और कोई शिष्टाचार से। इस कहानी में मंत्र और तंत्र शास्त्रों के विषय पर कुछ प्रकाश डाला गया है। जादू वास्तव में क्या है? प्राचीन हिन्दू उसे क्या समझते थे? और किस प्रकार उसे करते थे? इस में यही विषय आया है। भूमिका में किसी विषय की व्याख्या करना निरर्थक है। पाठक पुस्तक पढ़ते समय स्वयं समझते जायेंगे कि अथवा यह विषय अपनी विशेष महत्ता की दृष्टि से ध्यान देने योग्य था या नहीं। पूर्व और अमरीका में आज कल लोग मैस्मरेजिम हिप्नोज़िम, टैली पैथी पर प्राण देते हैं। यह स्वयं हमारे मंत्र शास्त्रों के आविष्कार की भी हैसियत नहीं रखते। अंग्रेजी ज्ञाता लोग उन की तो कदर करते हैं मगर अपने घर की सम्पति की बड़ी बे कदरी करते रहते हैं।

राधा स्वामी मत में शामिल होने से पहिले मैं स्वयं मैस्मरेजिम आदि का प्रेमी था।

कुछ साधन भी करता था मगर जब हुजूर महाराज की शिक्षा को ग्रहण किया। इसको पूर्ण रूपेण त्याग देने का आदेश हुआ। इस कहानी में केवल सिद्धान्त वर्णन करूंगा ताकि हमारे प्रेमियों को कुछ इस से साधारण जानकारी होजाय और वह मंत्र शास्त्र के बेजा पक्षपात से बचें और ऋषियों की विद्या का अनादर न करें।

इस के लिखने का केवल यही उद्देश्य है। आशा है इस सिल सिले के दूसरे उपन्यासों की तरह पाठक इसे भी रोचक पायेंगे।

'शिव'

शाही जादूगरनी

कहानी का प्रारम्भ

रात के समय आकाश में तारागण खिले हुये थे ; नदी की तट भूमि पर टिम टिमाते हुये दीपकों के प्रकाश में कुछ साधु सत्संग में बैठे हुये जगमगा रहे थे।

एक साधू ने दुतारा उठाया और मस्त होकर यह शब्द गाकर सुनाया। पाठक इस शब्द के अर्थ को भली प्रकार समझलें। यही कहानी का मूल है।

शब्द

ज्ञानी का व्यैहार क्या कोई बरने पार।
जैसे जल में कमल विराजे, जल से थल से न्यारा॥
तैसे ही ज्ञानी रहे जग में, व्यापे नहीं संसारा॥ ज्ञानी०॥
कमठ रहे पानी के भीतर, रेत में अंडे देवे।
दृष्टि सृष्टि का मर्म न जाने, दूर से सब को सेवे॥ ज्ञानी०॥
कर्म करे कर्त्ता न कहावे, कर्म का फल नहिं चाखे।
भोग सोग रोग नहिं लागे, अधर सोहंगम भाखे॥ ज्ञानी०॥
कोई कोई भृंगी कीट फंसावे, अपने रूप बनावे।
कीट न जाने भृंगी मरम को, गुरु यों शिष्य चितावे॥ज्ञानी०॥
जल में खेले खेल निरंतर, पल पल में मुरगावी।
गोते मारे पर नहिं भीगे, ज्ञानी सोई प्रतापी॥ ज्ञानी०॥

रंग रंग में बहु रंग भासे, गिर गिट चतुर सुजाना।
अपना रंग न त्यागे कबहू, सो ज्ञानी परमाना ॥ ज्ञानी०॥
एक जो कहिये शक आचारज, गर्भ से माया त्यागी।
दूजे बाम देव ऋषि साँचा, गर्भ भया अनुरागी ॥ ज्ञानी०॥
तीजे दत्त महा मुनि योगी, देखि देखि संसारा।
गुरु मय जगत दृष्टि परतीती, महा अगम्य अपारा ॥ ज्ञानी०॥
चौथे ज्ञानी वशिष्ट कहावे, सम दम कबहू न त्यागे।
विश्वामित्र बैरी बन आये, अन्त गुरु पद लागे ॥ ज्ञानी०॥
पंचम ज्ञान ध्यान की मूरति, जनक प्रजाहित राजा।
भोग योग दोनों नित बरते, साज भक्ति का साजा ॥ ज्ञानी०॥
छटा जो कहिये कृष्ण विवेकी, भारत आन लड़ाया।
दर्पण की सुन्दरि बन आया, फंसा न काहु फंसाया ॥ ज्ञानी०॥
सप्तम सनकादिक निर्ज्ञानी, बाल अवस्था प्यारी।
परम हंस की अद्भुत मूरति, अन हित ना हितकारी॥ ज्ञानी०॥
वाचक-ज्ञान का भेद न जानें, ग्रंथ ग्रंथि में अटका।
कहें 'शिव' सोच समझ मन अपने, जन्म की फाँस वह लटका ॥
ज्ञानी०॥

एक चेला–"शब्द के मनोहर होने में तनिक भी संदेह नहीं है मगर बुद्धि नहीं मानती कि ज्ञानी दुनिया के भोग बिलास में फंस कर फिर भी ज्ञानी बना रहे। योग और भोग में आकाश पाताल का अन्तर है। जो भोगी है वह योगी नहीं हो सकता।"

गुरु—"समझ समझ का फेर है। प्रारम्भ में तो ऐसा ही होना चाहिये जैसा तेरा विचार है लेकिन जब अध्यात्म (रूहानियत) की श्रेणियाँ तय हो जाती हैं फिर कमल और मुरगावी की तरह ज्ञानी को दुनियां रूपी जल से भीगने का भय नहीं रहता, क्योंकि वह देह की निचली अवस्थाओं से

बहुत ऊँचे चढ़ जाता है।"

चेला—"मगर भगवन! ऐसी उच्च श्रेणी पर चढ़े हुये महापुरुष को संसार के व्यौहार में फंसने की क्या आवश्यकता है?"

गुरु—"उसके लिये बन्धन और मुक्ति और योग और भोग सब निरर्थक हो जाते हैं। यदि प्रारब्ध कर्म के बस में आकर वह सांसारिक कर्तव्य कर्मों के करने की ओर लगे तो केवल अपने पिछले कर्म का भोगने वाला कहलायेगा। भविष्य में उसके कर्म फल नहीं देंगे।"

चेला—"मैं इस बात को मानने को तत्पर नहीं हूँ।"

गुरु—"न सही।"

चेला—"मगर आपका कर्त्तव्य है समझाना।"

गुरु—"किस को?"

चेला—"मुझको।"

गुरु—"मगर जब तूने पहिले ही यह कह दिया कि मैं इस बात को मानने को तत्पर नहीं हूं तो तू अधिकारी कहाँ रहा। न मुझे समझाने का अधिकार है और न तुझे समझने का अधिकार है। उपदेश अधिकारी के लिये है। मैं समझता हूँ तू सिद्ध योगी है। योग में तुझे सिद्धि प्राप्त है मगर योग की सिद्धि शक्ति का मिल जाना आत्मिक इष्ट नहीं है। इष्ट पद अभी बहुत दूर है। इस शब्द में योग या सिद्धि शक्ति की महिमा का वर्णन नहीं है। इसमें ज्ञानी के गुणों की ओर ध्यान दिलाया गया है। बेटे! ज्ञान और वस्तु है और योग और वस्तु है। यह आवश्यक नहीं कि ज्ञानी योगी हो अथवा योगी अवश्य ही ज्ञानी हो। योग की कमाई आत्मिक मार्ग में श्रेणी मात्र है। योग मुक्ति का साधन तो हो सकता है मगर मुक्ति नहीं देता। मुक्ति केवल ज्ञान से प्राप्त होती है। जिनको ज्ञान प्राप्त

हो गया है फिर वह अभय पद को पा जाता है। फिर चाहे वह संसार के व्यौहार में रहे या न रहे। रहने से वह संसारी नहीं बन जाता और न रहने से उसका मान नहीं बढ़ जाता। तू फिर इस संसार के विषय पर विचार कर।

चेला--"महाराज! यदि ज्ञानी इन्द्रियों का पुजारी हो गया तो बात क्या हुई। उसने सद्‌आचार को धक्का पहुँचाया। आप अपयश का भागी हुआ और दूसरों के लिये बुरा उदाहरण स्थापित किया।"

गुरु--"बेटे! तूने फिर भूल की। ज्ञानी तो इन्द्रियों का पुजारी हो ही नहीं सकता। देह और इन्द्रियों का तो कहना ही क्या है वह तो आत्मा का पुजारी भी नहीं रहता। ऐसी पूजा और धार्मिक बन्धनों तक के जाल से वह मुक्त हो जाता है। तेरी दूसरी आपत्ति कि ज्ञानी संसार का व्यौहार करने से दुराचार का उदाहरण स्थापित करते हैं तेरी दूसरी गलती है। ज्ञानी मर्यादा अर्थात सामाजिक नियमों के विरुद्ध कभी नहीं चलते और यथाशक्ति उनका कोई काम नियम के विरुद्ध नहीं होता।"

चेला--"महाराज! आपकी बातों से भ्रम में पड़ गया। भ्रम महा दुखदाई होता है। मेरी गलत समझ का समाधान कर दीजिये।"

गुरु--"जल्दी नहीं, अब तुझे एकत्व बुद्धि की उच्च अवस्था में रखने के लिये समय का मिलना आवश्यक है। तूने मेरी बात पर विरोध किया। जा कुछ दिनों मुझसे दूर रहकर अपने अनुभव को बढ़ा। उस पर भी अगर तुझे आज का उपदेश समझ नहीं आया तो बारह वर्ष बाद तुझे तेरे प्रश्न का उत्तर दूंगा।"

चेला--"महाराज! अपने चरणों से मुझे दूर कर

रहे हैं।"

गुरु—"नहीं बेटे! तू सब शिष्यों से मुझे अधिक प्रिय है। मैं तुझे केवल प्रेम ही नहीं करता किन्तु तेरा मान भी करता हूँ। इस समय तू भ्रम में पड़ा है। मैं जो बात कहता हूं तेरी समझ में नहीं आती। मैं कहता हूँ कि ज्ञानी का कोई काम मसलहत से खाली नहीं होता और अभी तू उसे भी भूल गया। यह कुदरत का नियम है। एक सीढ़ी से गिरा हुआ आदमी प्रायः दो चार सीढ़ियों तक लुढ़क जाता है। इस समय मेरी संगत तेरे लिये हितकर नहीं है। कुछ दिनों दूर रहकर तू स्वयं सोच विचार से काम लेगा। मैंने बचन दिया है कि बारह वर्ष बाद तेरे प्रश्न का उत्तर दूंगा। निकटता और दूरी दोनों ही कल्पनायें हैं। आश्चर्य्य है कि तू इस समय मेरी कोई बात नहीं समझता। जा, भ्रमण कर और अपना अनुभव बढ़ा।"

चेला—"जो आज्ञा।"

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है और वह शोकातुर होकर नमस्कार करके बिदा होता है और गुरु ध्यान लगाकर एकान्त बास करने लगते हैं।

पति से वियोग होगया। लड़का मुझे आदर की दृष्टि से नहीं देखता। प्रत्यक्ष में यद्यपि सब सहानुभूति करते हैं मगर किसी के हृदय में मेरे लिये स्थान नहीं है। दिन को मैं अपने भाग्य पर विचार करती हूँ और रात को रोती रहती हूँ। न दिन को चैन न रात को आराम। यह मेरी दशा है। मैं सोचती हूं कि पहले मंत्र जंत्र के साधन से मुझ में कई प्रकार की शक्तियाँ आ गई थीं किन्तु इनका बुरा प्रयोग किया गया। अब मैं निर्बल हो गई। समस्त सिद्धि शक्ति धूल में मिल गई। जब तक बर्तन असली दशा में रहता है तब तक उसमें पानी ठहरता है। जहां ठेस लग कर वह टूट गया अथवा सड़ने गलने से उसमें छिद्र पैदा होगये तो फिर लाख प्रयत्न किया जाय वह बाहर निकल जायगा। ठीक यही मेरी दशा है। मैंने परिश्रम करके आँतरिक मानसिक शक्ति को पहिले बढ़ा लिया था। सब मेरा नाम सुनकर काँप उठते थे मगर अब क्या है? डरने को तो सब डरते हैं मगर उन्हें क्या मालुम कि मेरी सिद्धि शक्ति नष्ट हो गई। वह उसी पहिली दृष्टि से देखते हैं किन्तु इधर तो मैं बड़ी विवश हो रही हूँ। उधर भय के कारण मुझे किसी के प्रेम प्रीति की खुशी नहीं मिलती। जो जिससे डरता है लाख बातें बनाया करे मगर वह उसे कभी प्यार न करेगा। भय और प्रेम एक दूसरे के विरोधी हैं। प्रेम में निर्भयपना होता है। भय में घृणा रहती है। अज्ञानी शासक या राजा चाहते हैं कि लोग उनके रौब दौब में रहें मगर इसका ज्ञान नहीं है कि डराते और धमकाते रहने से स्वयं उनकी हानि होती है। सच्चा शासन तो वह है कि जिसका सिक्का प्रेम के साथ दिलों पर बैठा हो। उनकी नींव दृढ़ रहती है। भय और घृणा के राज्य की जड़ सदा खोखली रहती है और कभी दृढ़ नहीं होती। यही मेरी दशा है। शत्रु

सिर पर आ पहुँचा। मैं बेवश हूँ। क्या करूं क्या न करूं। मुकाबला तो मैं अवश्य करूंगी मगर जानती हूँ कि इसका क्या परिणाम होगा। लड़ने वाले लड़ेंगे। मरने वाले कटकर गिरेंगे मगर क्या वास्तव में मैं मुकाबले के लिये तत्पर हूँ, यह मैं भी भली प्रकार जानती हूँ।

अच्छा! रात का समय है नींद तो आने वाली नहीं है। मैं पलंग पर लेटती हुई करवट बदल रही हूँ। संकल्प विकल्प सता रहे हैं। अविवेकी और पथ भ्रष्ट मनुष्य का भारी शत्रु उसका मन होता है। शारीरिक कष्ट तो फिर भी सहन कर लिये जाते हैं। ऊपर से उनका इलाज भी सम्भव है मगर मानसिक कष्ट वह बुरी बला है कि उससे छुटकारा नहीं मिलता। मन के सताये हुये रोगी को दूसरों से अपना हाल कहने में संकोच रहता है। इस कारण से उसे उनकी सहानुभूति के विचार से लाभ उठाने का भी अवसर तक हाथ नहीं आता।

एकान्त का समय है। आज और कुछ नहीं होता। आओ आज मैं अपने जीवन की घटनाओं पर विचार करूँ। मैंने अब तक किस तरह इसके विभिन्न झमेलों को पार किया है। क्या आश्चर्य्य कि इस प्रकार सोचने से कोई बात समझ में आ जाय और मैं अपनी दशा को भविष्य के लिये सुख-दायक बना सकूं।

दूसरा प्रकरण

बचपन

बालेपन का सुख महा, ठहरा वो दिन चार।
सनकादिक मोहे निरख, अब लग बाल विचार॥

मेरे पिता कामरूप देश के राजा थे, जो आसाम कहलाता था। यहाँ सब शाक्तिक मार्ग के लोग रहते थे। शाक्तिक शक्ति के

उपासक कहलाते हैं। शक्ति ही शक्तिवान के प्राकट्य का सामान है। शक्ति न हो तो फिर बल, बुद्धि सब ही निरर्थक हैं। यहां के निवासी सच्चे मालिक के इसी तत्व की उपासना करते हैं। ईश्वर एक है और जीव उसको अनेक रूप से पूजते हैं। कोई उसको पिता कहता है और कोई माता, कोई उसे राजा समझता है तो कोई उसे मित्र। जिस में जो भाव रहता है, वह उसी से सम्बन्ध पैदा करके उसी प्रकार के ख्याल और ध्यान के भ्रम को पक्का करता है। योगी उसे ईश्वर और आदमी उसे गुरु समझते हैं। ज्ञानी उसी को परमतत्व मानते हैं। उसका रूप नहीं है मगर हम मा बाप, गुरू, परमात्मा, प्रियतम समझ कर अपने अंदर उसकी कल्पित मूर्ति स्थापित करते हैं। वह न किसी की माता है न पिता, किन्तु मूर्तिमान जगत में रहने के कारण हम उसे अपनी बुद्धि में माता पिता, राजा गुरु आदि का रूप देकर उससे अपने मनोरथ सिद्ध होने की प्रार्थना करते हैं। आसाम निवासियों को माता से अधिक कोई प्यारा दृष्टिगोचर नहीं हुआ। यह कारण है कि वह उसे प्यारी मां मानकर उसी भाव को पक्का करते हैं। यही प्राचीन काल से इस देश का धर्म है। देवी या शक्ति के अनगिनत रूप हैं मगर काम रूप देश के रहने वाले कच्छया देवी की उपासना करते हैं। यही रूप उनका इष्ट है। मेरे माता पिता देवी के उपासक थे। पिता का नाम शील मान था। वह अपने समय का बड़ा शक्ति शाली राजा हुआ है। माता चंडिका कहलाती थी। मैं उन दोनों की आँख की पुतली थी। दोनों ही मुझे हृदय से प्यार करते थे मगर मेरे जीवन में माता इतनी प्रभावशाली नहीं हुई जितनी पिता की संगत फल दायक सिद्ध हुई। मां सीधी सादी स्त्री थी। उसकी दुनिया शाही महल की चार दीवारी तक सीमित थी। इसके अतिरिक्त जब मैं दस वर्ष

की हुई माता काल का ग्रास हो गई। पिता के लिये सच्चे अर्थों में यद्यपि माता का कर्त्तव्य पालन करना असम्भव था मगर उसने यथाशक्ति मुझे प्रसन्न रखने का कोई उपाय बाकी नहीं छोड़ा। पढ़ाया लिखाया और इसके कारण मैं राजनीति, वाणविद्या, घुड़सवारी आदि में बहुत प्रवीण हो गई। मैं जो बात मुहँ से निकालती थी उसी समय पूरी होती थी। मैं पहिले कह चुकी हूँ कि मैं हठीली थी। यह मुझ में बड़ा दोष अवश्य था मगर मेरे हृदय में यह बात बैठा दी गई थी कि दुनियाँ में विद्या कला कौशल से बढ़कर और कोई काम नहीं है। इस कारणों मैं हर प्रकार की विद्याओं की इच्छुक रहती थी।

मैं ग्यारहवें बर्ष में थी। एक बार शहर की गली में हाथी पर बैठी चली जारही थी और अपने विचार में संलग्न थी। चित्त यकायक कोंधे की तरह भड़क गया। ऐसा ज्ञात हुआ कि कोई ऐसी शक्ति है जो मुझे अपनी ओर खेंच रही है। दृष्टि उठाई। बाईं ओर पन्द्रह वर्ष की एक अत्यन्त सुन्दर लड़की दिखाई दी। रुप रंग मनोहर, नेत्रों में आकर्षण का गहरा प्रभाव, सिर से पांव तक ज्योति के सांचे में ढली हुई! मेरा इस ओर देखना था कि वह मुस्कराई। मैंने हाथी को उसी जगह खड़ा कर दिया। उसे हाथ के इशारे से पास बुलाया। वह चली आई! इस प्रकार ठहरना और दूसरे के साथ वार्तालाप करना साथियों को बुरा लगा। मगर वह मेरी हठ से डरते थे। उनमें साहस कहाँ कि मेरी बात न मानते!

मैंने उस लड़की से पूछा–"तू कौन है?"

वह बोली–"लोना चमारी।"

मैंने कहा–"लोना चमारी?"

वह बोली–"हां हां, लोना चमारी"

मैंने कहा–"तुम क्या चाहती हो?"

वह बोली-"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मुझे किसी वस्तु की इच्छा है ?"

मैंने कहा-"मेरा हृदय कहता है। नहीं मालुम मेरा चित्त क्यों तुम्हारी ओर आकर्षित हो रहा है। यदि यह दशा न होती तो मैं कभी एक क्षण के लिये भी यहाँ न ठहरती।"

वह बोली—"तब यों कहो कि तुम मुझ से कुछ चाहती हो। मुझे किसी चीज की आवश्यक्ता नहीं है।"

मैंने कहा—तुमने अपने आप को चमारी बताया है अन्य था मैं तुम को अपने साथ महल में रखती।"

वह मुस्कराई—"चमारी तो मैं अवश्य हूँ। इस से मुझे इन्कार नहीं है। अपनी असलीयत को छिपाना अथवा मा बाप का नाम बदल कर सुनाना नीचता है। राजकुमारी मैं तो दुनिया के समस्त स्त्री पुरुषों को चमारी और चमार समझती हूं।"

इस अन्तिम वाक्य को सुनकर मैं दंग रह गई। आज तक ऐसी बात मैंने किसी की जुबान से नहीं सुनी थी। पूछा—"क्या मैं भी चमारी हूं ?"

उसने कहा —"इस में संदेह ही क्या है ? जितने चमड़े वाले हैं, जिनका शरीर चमड़े के वस्त्रों में ढका हुआ है और जिनकी दृष्टि चमड़े पर रहती है, वह सब चमार और चमारी हैं। क्या तुम्हारे ऊपर चमड़े का खोल नहीं चढ़ा हुआ है ?"

यह बात बड़ी निर्भयता के स्वर में कही गई थी। यदि साथ वालों का बस चलता तो वह उसकी जुबान खेंच लेते मगर मेरे कारण चुप थे। फिर भी वह हाथी को हूल कर आगे की ओर बढ़ना चाहते थे ताकि इस अप्रिय वार्तालाप का अन्त होजाय। मगर मेरी दशा उल्टी थी। मैंने इशारे से उसे

रोक दिया। वह क्या करते विवश थे। मैंने कहा –"तुम नीचे खड़ी हो मैं हाथी पर सवार हूँ। तुम मेरे पास आजाओ। महल में चलकर तुम से बात चीत करूँगी।

उसने स्वीकृति प्रगट की। हाथी वान ने हाथी को बैठा दिया और लोना चमारी सीढ़ी पर पाँव जमाती हुई हाथी पर चढ़ आई। मैंने उसे पास बिठाया और हाथी वान से कहा — महल की ओर लौट चलो। उनको मेरा यह व्यवहार बुरा लगा मगर वह विवश थे। मैं चमारी को लेकर रनबास में लौट आई।

मेरे जीवन की यह पहली घटना थी जिस ने मुझे थोड़े ही दिनों में कुछ का कुछ बना दिया।

तीसरा प्रकरण

लोना चमारी

संस्कार अति प्रबल है, शक्तिवान अधिकाय।
अधिकारी निद्धि सिद्ध लै, सहज ही सहज उपाय॥

उस सहेली को साथ लिये हुये मैं अन्दर आई। कमरे में प्रवेश किया। जब लौंडी बाँदियों ने सुना कि मैं अपने साथ चमारी को लाई हूँ, उनके पाँव के नीचे की मिट्टी खिसकने लगी। चमार का छूना ही पाप समझा जाता है। हिन्दू कभी इस जाति के आदमी को हाथ नहीं लगाते।

फर्श पर बैठकर मैंने पूछा–"कहो क्या कहती हो?"

उसने जबान खोली "यह उल्टी बात है। मुझे कुछ कहना सुनना नहीं। तुम मुझको अपने साथ लाई हो, तुम कहो और मैं सुनूं। तुम पूछो मैं उत्तर दूँ।"

बात भी सच्ची थी। मैं दो क्षण के लिये चुप होगई। हैरान थी कि यह कैसी लड़की है कि जिस की बातों को सुनकर

मुझे उसके एक एक शब्द पर अचंभित होना पड़ता है। जो बात जुबान से निकालती है तुली हुई। बावन तोले पाव रती। मैं अपने आपे से जाती रही।

देर के बाद मैंने कहा–"यह क्या कारण है कि मुझे तुम्हारी ओर इतना आकर्षण है?"

लोना चमारी मुस्कराई। "यह कुछ कुदरत का नियम है कि जिन दो आदमियों के हृदय एक तरह के बने हुये होते हैं वह परस्पर मेल मिलाप के अभिलाषी रहते हैं। एक बात तो यह है। दूसरी बात यों समझो कि जिनके पहिले जन्म के संस्कार मिलते जुलते हैं अथवा उनको पहिले जन्म में एक दूसरे से सम्बन्ध रहा है तो जब उनकी आँखें दो चार होती हैं स्वयं प्रेम उत्पन्न हो जाता। राह में चलने वाले आदमी आमने सामने से आरहे हैं। एक ने दूसरे को न कभी पहिले देखा था न सुना था मगर आँखों के मिलते ही अनुराग पैदा हो जाता है। इसी प्रकार जिनके साथ पिछले जन्म में किसी प्रकार की शत्रुता रहती है, राह में मिलते ही परस्पर शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। तुम राज कुमारी हो। महल के बाहर कम निकलती हो। इसलिये सम्भव है कि इस सिद्धान्त को न समझती हो मगर मैं गरीब हूँ, हर समय घूमती फिरती हूँ। मुझे इसका काफी अनुभव है। इन दो बातों के अतिरिक्त एक बात और भी है वह मैं तुम से इस समय न कहूँगी क्योंकि तुम समझ न सकोगी।"

मैंने पूछा—"क्यों?"

लोना चमारी ने कहा–"उसके समझने के लिये कुछ दिनों की संगत आवश्यक है। जब तक सत्पुरुषों की संगत न हो वह हजार प्रयत्न करने से भी समझ में न आयेगी!"

मैं यह सुनकर हैरान रह गई। क्या चमार की लड़की राज पुत्री से भी अधिक बुद्धिमान और जानकार होसक्ती है? जीवन में मैंने पहिली ही बार ऐसी अपमानसूचक बात सुनी थी।

मैंने कहा—"मैं उसे भी जानना चाहती हूँ। जिन दो बातों का तुमने अभी उल्लेख किया है मैं उसका अनुभव कर चुकी हूँ। चार आँखों के मिलते ही मनुष्य के हृदय में स्वयं राग और द्वेष के विचार पैदा होने लगते हैं। उससे मुझे इन्कार नहीं है। हां, मैंने पुनर्जन्म और आवागवन के विषय पर कभी विचार नहीं किया और न षट दर्शन पढ़े हैं। वैसे मैं दो शास्त्रों की ज्ञाता हूं। सम्भव है कि मैं उसे भी समझ सकूं।"

लोना चमारी—"गुरु ने मुझे ऐसी हिदायत नहीं की। मैं अनाधिकारी को यह भेद नहीं बता सकती।"

मैंने पूछा-"क्या तुम गुरु की चेली भी हो? मेरी गिनती अनाधिकारी में तो नहीं है। मैं इस देश की राजकुमारी हूं। तुम मेरी प्रजा हो। मुझे अधिकार है कि तुम से इसे भी सुनूं"

लोना चमार हंसी। "यह सच है। ईश्वर ने तुम्हें राज-वंश में जन्म दिया और मैंने गरीब के घर जन्म लिया। यह अपनी अपनी करनी का फल है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि राजा या रानी के पास हर वस्तु हो और गरीब हर बात से वंचित रहे।"

दुनियां में कोई किसी बात में बढ़ा चढ़ा है कोई किसी में कम है। जो बात महात्माओं को प्राप्त है वह राजाओं के हिस्से में नहीं आती और जो धन माल राजा को प्राप्त है वह महा-त्माओं को नहीं मिलता, मगर प्रकृति ने न्याय की तराजू का पल्ला बराबर रक्खा है?"

मुझे यह गुस्ताखी के वाक्य बुरे लगे। मैंने प्रश्न किया—

"तुम यह क्या कहती हो? क्या कभी राजा और भिकारी समान हो सकते हैं? कभी नहीं! यह कठिन है। आकाश पृथ्वी और पृथ्वी आकाश नहीं है। कुत्तों को शेर के भावों के साथ क्या सम्बन्ध है! भिकारी और धनी कब बराबर हुये हैं!"

लोना चमारी बोली—"मैंने यह बात नहीं कही है। मैंने केवल यह कहा है कि न्याय की तराजू के पल्ले बराबर बनाये गये हैं।

मैंने कहा—"यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

लोना हँसी। "तुम यों समझो—हाथी बड़े डील डौल वाला है। चिउंटी छोटी है। हाथी हजारों और लाखों चिउंटियों को अपने पाँव से पामाल कर सकता है लेकिन यदि एक चिउंटी इसकी सूंड में चली जाय तो वह उसी समय मर जाता है। देखो यहां न्यूनता अधिकता का बदला (मुआविजा) किस तरह दिया गया है। सुख चैन के सब सामान होते हुये भी राजा को रात को नींद का आनन्द नहीं आता। साधु सुख की नींद सोता है। निर्धन को सिवाय पेट के किसी की फिक्र नहीं रहती मगर राजा को देश, माल, खजाना, फौज और प्रजा की चिन्ता रहती है। इस दृष्टि से दोनों की हैसियत बराबर रहती है मेरे कहने का यह अभिप्राय था।"

मैंने कहा—"तुम तो भली पंडितानी हो। मैं मान गई। तुम से मैं नहीं जीत सकती। जिस तरह केले के पत्तों के अंदर पत्ते और प्याज के छिलकों के अन्दर से छिलके निकलते हैं वैसे ही तुम्हारी एक बात में बहुत सी बातें पैदा होती हैं। फिर भी मुझे नितान्त मूढ़ ही न समझो। मैं भी कुछ लिखी पढ़ी हूँ। मैं तुम्हारे तीसरे नियम को अवश्य समझूंगी।"

लोना ने कहकहा मारा—"राजकुमारी! तुम अभी अज्ञान हो। तुम्हारी समझ बूझ निश्चयात्मक नहीं हुई है।"

मैं यह सुनकर तिलमिला उठी। किसी ने आज तक मुझे अज्ञान नहीं कहा था। मैं क्रोध में आकर कुछ कहने ही को थी कि लोना चमारी ने मुझे गहरी दृष्टि से देखा। मैं समझ गई। जबान बन्द की बन्द रही। एक शब्द भी मुंह से न निकला। ऐ ईश्वर! यह कैसी लड़की है जो मेरे चित्त पर इतनी सुगमता से हावी हो जाती है। मुझ से छोटे बड़े सबही डरते हैं किन्तु यह बिल्कुल निर्भय होकर मुझे कोरी कोरी सुना रही है और मैं दम तक नहीं मार सकती। क्या यह मुझसे अधिक शक्तिशाली है। आखिर बात क्या है! मैं थोड़ी देर तक मन ही मन मैं सोचती रही। अन्त में मुझे कहने का साहस हुआ।"

मैंने कहा—"क्या तुम यह भेद न बताओगी?"

लोना बोली—"मैंने इन्कार तो नहीं किया। यदि यह इच्छा है तो कुछ दिनों मेरी संगत में रहो। जब मैं तुम्हारा अधिकार और संस्कार देख लूंगी तो किसी न किसी दिन बता दूँगी।"

मैंने कहा—"खूब! यह न कहो कि तुम को मेरे साथ रहने की इच्छा है। क्या तुम महल में नौकरी की इच्छुक हो?"

लोना ने तिरछी चितवन से मुझे देखा। "तुम ने फिर गलती की। तुम को राज का अभिमान है। मुझे तुम्हारी नौकरी की आवश्यकता नहीं है। और न मैं इस विचार से तुम्हारे पास आई हूँ। तुम आप जानती हो कि तुम मुझे यहां लाई हो। यदि मेरे रहने से किसी का लाभ है तो तुम्हारा है। यदि तुम नहीं चाहती तो मुझे आज्ञा दो मैं अपने घर जाऊँ। घमंडी चेली को मैं फूटी आँख से भी देखना पसंद नहीं करती।"

मैंने कहा—"होश की दवा करो। तुम चमारी हो। मैं राज पुत्री हूं। मुझ में तुम में आकाश पाताल का अन्तर है। अभी तुम मेरे पास आई हो और अभी मुझे अपना शिष्य बनाने लगीं।"

लोना चमारी ने उत्तर दिया-"जो व्यक्ति किसी से कुछ जानना चाहे वह उसका शिष्य हो चुका और जिसने उसे जो रहस्य बताया, समझाया बुझाया वह उसका गुरु हो चुका। गुरु और शिष्य में सींग पूंछ थोड़े ही होती है।"

मुझे फिर क्रोध आया। इस कुभाखिन को हो क्या गया है जो चमारी होकर मुझे अपनी शिष्या बताती है मगर लोना ने उसी समय मेरे चित्त के भावों को भाँप लिया। उसी प्रकार की दृष्टि से मेरी ओर फिर देखा और मेरा चित्त बैठ गया। मैं उससे कुछ न कह सकी।

लोना चमारी बोली-"राज कुमारी! या तो मुझे अब घर जाने दो या मेरी संगत स्वीकार है तो शिष्य बनो अन्यथा यह रहस्य और तरह पर मैं तुम को नहीं बता सकती। गुरु की ऐसी आज्ञा नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि गुप्त विद्या या अंतरीय विद्या सीखने का अधिकार केवल शिष्य और पुत्र को है। तीसरा इस दौलत की अधिकारी नहीं हो सकता। मैं विवश हूँ। कहो कौनसी बात स्वीकार है—शिष्य बनना या उस दौलत से बंचित रहना?"

इसे सुनकर मैं बड़ी परेशान थी। मैंने पूछा-"क्या यह गुप्त विद्या है और क्या यह बड़ी दौलत है?"

लोना ने उत्तर दिया—"हाँ, यह गुप्त विद्या है और यह वह धन है जिस को पाकर मनुष्य धनी होजाता है।" मैंने कहा—"बहुत अच्छा। मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है। मै नहीं चाहती कि तुम एक क्षण को भी मुझ से पृथक रहो। मैं जान गई कि तुम में किसी न किसी प्रकार की सिद्धि है वरन् यह सम्भव नहीं था कि तुम इस प्रकार मुझ पर विजयी होजातीं।" लोना फिर हंसी और उस दिन से मेरे साथ रहने लगी। दरबारियों और मंत्रियों को स्वीकार नहीं था कि कोई चमारी महल में

रहे मगर वे मेरी हठ को क्या करते! पिताजी को मेरी प्रसन्नता हर तरह स्वीकार थी। सब कह सुनकर चुप हो रहे।

चतुर्थ प्रकरण

जादू

मोहा मोहन मंत्र सों, मारन मंत्र सों मार।
उचटा नरका मन अभी, उच्चाटन व्यौहार॥

मैं प्रति दिन उस चमारी की संगत में उठने बैठने लगी। वह सुन्दर थी, प्रसन्न चित्त, मधुर भाषी और शिष्टाचारिणी थी। उसने धीरे धीरे अपने व्यव्हार से सब को प्रसन्न कर लिया। सभी सहेलियां उस से हिल मिल गईं। छः मास पश्चात् उसने कहा—"राजकुमारी! यदि अब तुम्हारा मन चाहे तो मैं वह भेद तुम को बतादूं क्योंकि तुम को अधिकार है।" मैंने कहा—"अन्धा क्या चाहेगा दो आंख। नेकी और पूछ पूछ।"

उसने उत्तर दिया—"जो विद्या मैं तुम को बताना चाहती हूँ सर्व साधारण उसको जादू कहते हैं। संस्कृत के समस्त मंत्र शास्त्र इस से भरे हुये हैं। उनमें कई प्रकार के मंत्र आते हैं। मैंने पहिले संस्कृत भाषा सीखी। फिर गुरु से यह विद्या सीखी।"

मैं ने पूछा—"तुम्हारा गुरू कौन है?"

लोना ने कहा—"गुरू गोरखनाथ।"

"मैं यह नाम पहले भी सुन चुकी हूँ।" इसी व्यक्ति ने मेरे जीवन को नीरस करदिया जैसा कि आगे चलकर मैं अपना वृतान्त सुनाऊंगी।

मैंने कहा—गोरख नाथ तो विख्यात सिद्ध हैं। मैंने उनका कभी दर्शन नहीं किया केवल नाम सुन रक्खा है। लेकिन जिसको

तुम मंत्र जंत्र कहती हो उस पर मुझे विश्वास नहीं है। यह केवल गप ही गप है। मैं शुरू से सुनती चली आरही हूँ कि काम रूप की स्त्रियां विदेशों से आये हुये सुन्दर पुरुषों को मंत्रों के जोर से वश में कर लेती है और उनको गधा, कुत्ता और दूसरा पशु बना लेती हैं। दिन भर खूंटे से बंधे रहते है और रात को आदमी होजाते हैं मगर मैंने आज तक कोई ऐसी स्त्री नहीं देखी। न किसी आदमी को पशु बना हुआ पाया। तुम इतना पढ़ लिख कर इन निरर्थक बातों पर विश्वास करती हो।"

लोना ने उत्तर दिया—"बात कहने का फेर है। क्या मैं ने तुमको अपना पशु नहीं बनाया ?"

मैं कहकहा मारकर हंसी। "मैं तो जैसी थी वैसी ही हूँ। स्त्री पहिले भी स्त्री अब भी। तुम्हारी बुद्धि पर क्या पत्थर पड़ गये हैं जो ऐसी उटपटांग बातें कहती हो।"

लोना की आंखें साधारण क्रोध से लाल होगईं। "जो शिष्य गुरू का मान नहीं करता, उसे विद्या में पूर्णता प्राप्त नहीं होती। अपमान अशिष्टता का सूचक है। इन्हीं शब्दों को तुम दूसरे ढंग में सभ्यता के तरीके पर कह सकती थीं। मगर खैर तुम्हारे हृदय में वैमनस्य नहीं है इसलिये मैं बुरा नहीं मानती मगर, भविष्य के लिये सावधान रहना। अपमान के शब्द जिभ्या पर न आने पायें।"

मैं लज्जित हुई। बहाना बनाया। "अब कहिये कि स्त्रियां पशु किस तरह बनाती है या यह बिल्कुल झूठ है ?"

लोना ने कहा-"मैंने तुम्हें अपना पशु बनाया। तुम हाथी पर चढ़ी जारही थी। मैंने एक नजर से तुम्हें देखा और तुम विवश होकर मेरी ओर देखने, वार्तालाप करने, अपने साथ बिठाने, महल में लेजाने और मेरी संगत का लाभ उठाने के

लिये मजबूर हुई। यदि मैं अमल (जादू) न किये होती तो तुम कब काबू में आने वाली थी। मैं भली प्रकार जानती हूं कि तुम हठीली हो। मैंने तुम को अपने वश में कर लिया और तुम मेरे आधीन हो गई। यह पशु, और गधा कुत्ता बनाने का अभिप्राय है। मूर्ख लोग सदा शब्दों पर जाते हैं इसलिये कोई असली रहस्य उनकी समझ में नहीं आता।"

मैं ने कहा"— तो यह कहिये कि मैं जो इतनी विवश होगई थी या अब भी तुम्हारे प्रभाव में हूँ वह तुम्हारे जादू के कारण से था। आज यह रहस्य खुल गया और मेरी हैरानी दूर होगई।" लोना बोली—पुरुष तो पुरुष पर मोहित होजाता है मगर स्त्री स्त्री पर कभी मोहित नहीं होती। 'मोहे न नारि नारि के रूपा। इस कारण मुझे तुम पर अमल (जादू) करने की आवश्यकता हुई क्योंकि यह विद्या बड़े परिश्रम से सीखी है। मैं चाहती थी कि कोई अच्छा शिष्य मिल जाय तो उसको गुरू की दौलत का उत्तराधिकारी बनादूं। यह विद्या यद्यपि पुस्तकों में अवश्य है मगर वह कीली हुई है। केवल सीना सीना (गुरू शिष्य द्वारा) प्राचीन काल से चली आरही है।"

मैंने पूछा—कीलने का क्या अभिप्राय है? लोना ने उत्तर दिया—"कील नाम है मेख का। मेख ठीक देने को कीलना कहते हैं। अपने भावार्थ को गोल मोल और अलंकार की भाषा में कहना ताकि सर्व साधारण उसे न समझें और शब्दों के जाल में फंसे रहें, कीलना कहलाता है।"

मैंने फिर प्रश्न किया—"ऐसा क्यों किया गया?"

लोना बोली—"यदि ऐसा न किया जाता तो अनाड़ी आदमी इस विद्या को पाकर अपनी और दूसरों की हानि करने लगते। मंत्र के अभिप्राय तीन हैं—मारन, मोहन,

उच्चाटन। मैं तुमको इनकी असलियत बताती हूं। मारन कहते हैं किसी के प्राण लेना' मोह लेना और अपने जाल में फंसा कर आधीन कर रखना। उच्चाटन की गरज है किसी के चित को उचाट कर देना ताकि वह अपने काम को छोड़ बैठे, बेचैन रहे। यदि समझदार आदमी इन को सीखले तो वह दुनिया का भला कर सकेगा और यदि स्वार्थ और नीच को उन से काम रहा तो वह उत्पात करने और झगड़ा फैलाने का अपराधी होगा। यह कीलने की गरज है।"

मैंने पूछा—"इस जादू का प्रारम्भ किस से हुआ और किसने इसे कीला है?"

लोना चमारी ने उत्तर दिया—"दुनिया में जितनी विद्याओं और कलाओं का चलन हुआ है वह सब शिव और पारवती के सम्वाद हैं। सम्वाद प्रश्नोत्तर को कहते हैं।"

पार्वती जी पूछती गईं और शिव जी उत्तर देते गये। भृंगी ऋषि ने उसे याद कर लिया। पुस्तक का रूप दिया। शिव भगवान को ज्ञात हुआ। इन पुस्तकों में शब्दों के गूढ़ार्थ बढ़ा दिये ताकि भाषा सीदी सादी न रहने पावे और इसका अधिकार केवल अधिकारियों को रहे। बाद में और ऋषियों ने इसकी पूर्ति की मगर सब ने शिवजी के नियम की पाबन्दी की। यह विद्या इस तरह गुप्त रीति से बहुत दिनों तक जारी रही। बाद को गुप्त होगई। बुद्ध भगवान के शिष्यों ने फिर से चालू किया और जब अपनी बारी पर यह गुप्त होने लगी तो गुरु गोरख नाथ ने उसको नया रूप दिया। मैंने उनसे सीखकर शिवजी के एकाक्षरी मंत्रों को भाषा का जामा पहिनाया। क्योंकि संस्कृत भाषा सब को नहीं आती, यह मेरी उपज है। मैं अब इसकी आचार्य गुरु हूँ। यदि मैं इस नवीनता से काम न लेती तो फिर इसके गुप्त हो जाने का भय था। संस्कृत और

भाषा में केवल रूप का अन्तर है। सिद्धान्त तो हमेशा एक ही है और एक ही रहता है। दुनियां विचित्र स्थान है। यहां सदा उलट फेर हुआ करते हैं। काल चक्र का पहिया सदा घूमता रहता है। वह कभी नीचे आता है कभी ऊपर जाता है। इसके कारण यह विद्या भी दूसरी वस्तुओं की तरह कभी गुप्त हो जाती है कभी प्रगट होती है।"

मैंने फिर पूछा—"आप जो कहती हैं वह सच है और सच होगा, लेकिन मैं जानना चाहती हूँ कि शिव भगवान ने किस तरह गुढ़ार्थ शब्दों के उलट फेर के क्रम में इसे कीला है। किसी उदाहरण से समझाइये।"

लोना ने कहा—"उदाहरणार्थ एक बात सुनो। किसी मंत्र के सिद्ध करने का उपाय यह बताया गया है कि श्मशान भूमि में जहाँ मुरदे जलकर भस्म हो गये हैं साधक जाय और मुर्दे की छाती पर बैठकर मंत्र का जप करे। तब उसमें एकाग्रता आयेगी। अनाड़ी आदमी तो शब्दों में अटक कर भूत और बैताल के डर से कभी श्मशान में न जायगा और न मंत्र सिद्ध कर सकेगा। मगर साधन सम्पन्न गुरु का चेला एकान्त में बैठ करके और उसका साधन करके सरलता से सिद्ध हो जायगा। यहाँ ऐसे अवसरों पर श्मशान भूमि मनुष्य का हृदय चक्र है जिसमें मनुष्य के समस्त निकृष्ट भाव जलकर भस्म का ढेर हो जाते हैं। साधक का स्वयं देह मुर्दा है। अभिप्राय यह कि मनुष्य पहिले अपने लोभ लालच के भावों को जला दे। फिर इस प्रकार चित्त को एकाग्र करले कि उसका अपना शरीर मुर्दे की भाँति गतिहीन हो जाय। जिस समय उसमें यह अवस्था आजायगी उसके मंत्र की सिद्धि में तनिक भी सन्देह न रहेगा। क्या तुम अब समझ गयीं?"

मैं ने कहा–'वाहवा ! क्या अच्छी व्याख्या है ! इन अलंकारों के प्रयोग करने की बात प्रशंशा योग्य है। यह सब सुन तो रक्खा था मगर असलीयत से अनजान थी।'

लोना बोली—असलियत गुरू सेवा ही से समझ में आती है। तुम भाग्यशाली हो कि मेरी शिष्यता में आई हो। अब मैं तुम्हें सब बता दूंगी और तुम अपने समय पर अधिकारियों को जो शैव और शाक्तिक धर्म के विश्वासी हैं इस की शिक्षा दे सकोगी।

कामरूप देश कमच्छिया देवी। जाके नरनारी शिव सेवी॥
तहाँ बसे लोना चमारी। मंत्र शास्त्र की जो अधिकारी॥
लोना चमारी लगाई फुलवाड़ी। फूल तोड़े नर और नारी॥
गुरु गोरख नाथ की दुहाई। जो जस करे सो तस फल खाई॥
जो कोई मंत्र की करे सिद्धि। वाके वस आवे नौ निद्धि॥
नौ निधि पाय लहे सुख सम्पति। कभी न भोगे दारुण आपति॥
नर नारी सब हों वस ताके। मोहे जाकी और वह ताके॥
गुप्त भेद कोई कोई जाने। बिन जाने कैसे नर माने॥
गुरु गोरख ने मर्म जनाया। तब लोना ने यह धन पाया॥
लोना देगी महश मती को। सुमति बना देगी कुमति को॥
फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा। जो मैं कहूं सो हो जाय साँचा॥

पांचवां प्रकरण

मंत्र शास्त्र

मंत्र जंत्र से सब बने, मंत्र जंत्र सिद्ध होय।
जो कोई साधे मंत्र को, सिद्ध कहावे सोय॥

मैंने पूछा–"यह सब ठीक है मगर मंत्र किस को कहते हैं?'

लोना बोली—"मैंने तुम को पहिले ही बता दिया है।'

संस्कृत भाषा में मंत्र कहते हैं सूत, तार या धागे को। इस शास्त्र का मन्तव्य यह है कि जिस तरह मकड़ी अपने पेट के अन्दर से जाला निकाल कर मक्खी फंसा लेती है, उसी तरह मंत्र शास्त्र का ज्ञाता अपने हृदय से विचार रूपी धागे निकाले और उसके द्वारा अपना काम सिद्ध करे। वह काम चाहे परमार्थ का हो चाहे स्वार्थ का। तांत्रिक ग्रंथों में पांच प्रकार के विषय होते हैं-(१) सृष्टि (२) प्रलय (३) देव पूजा बिधि (४) मंत्र सिद्धि या जादू और (५) चार प्रकार की मुक्ति। यह पांच विषय हर मंत्र शास्त्र में मिलेंगे। लेकिन मंत्र सिद्ध करने वाले केवल मारन, मोहन, उच्चाटन से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। कुछ की राय में मंत्र शास्त्र वेदों से भी अधिक प्राचीन हैं मगर गुरु गोरख नाथ जी और मेरी राय में मंत्र वेदों के बाद बने हैं और उनके आधीन हैं।"

मैंने पूछा—"उनके वेदों से प्राचीन होने के बारे में तुम्हें आपत्ति क्यों है ?"

लोना बोली—"इस कारण कि असली मंत्र तो वेदों के संहिता भाग ही में हैं। पहिले इनके जप और आराधना का रिवाज था और मंत्रों को पढ़कर ऋषि देव और शिष्यों को निमंत्रण देकर आवाहन करते और यज्ञों में बुलाते थे। बाद को जब वेद विद्या गुप्त होने लगी और इसकी कई हजारों शाखायें नष्ट होगयीं, शिव भगवान ने नये एकाक्षरी मन्त्र बनाये और उनको प्रचलित किया गया।"

मैंने कहा—"यह एकाक्षरी मन्त्र क्या होते हैं ?"

लोना ने उत्तर दिया—"साधारण रूप से जिनके शब्द का उच्चारण एक ही वार किया जाय।"

मैंने पूछा—"उदाहरण ?"

लोना ने कहा—'एक मन्त्र सुनो। ओ३म् ह्रंग ह्रांग ह्रांग खिंग फट स्वाहा। और भी इसी प्रकार।"

मैंने कहा—"यह मेरी समझ में नहीं आया कि केवल मन्त्र के जप से आदमी में सिद्धि कैसे आयेगी?"

लोना ने कहा—"नाम क्या है? नाम केवल शब्द ही तो है मगर जब इस नाम का संस्कार पक्का कर लिया जाता है तो उसके लेने से नाम वाला आदमी स्वयं आ जाता है। यह तुम देखती हो। विशेष नाम लेने से वही विशेष आदमी आयेगा जिसका नाम लिया गया है; क्योंकि इसमें नाम का संस्कार विशेष ढंग से दृढ़ किया जा चुका है। संस्कार का दृढ़ होना भी सिद्धि और शक्ति है और इसी संस्कार की दृढ़ता के लिये हर तरह का साधन किया जाता है। बात केवल इतनी सी है मगर थोड़े ही लोग रहस्य को समझते हैं।"

मैं ने प्रश्न किया—"संस्कार के दृढ़ करने से आप का क्या आशय है?"

लोना ने उत्तर दिया—"संस्कार संस्कृत शब्द (सम) (पूरा) और (क्र) (करने) से बना है। किसी बात का पूरा करना संस्कार है। हिन्दुओं में सामाजिक नियमों के ढंग पर सब के संस्कार किये जाते हैं। इनके विशेष अवसरों पर यज्ञ होता है और बहुत से लोग इकट्ठा होकर मंत्र पढ़ते हुये एक विशेष संकल्प को दृढ़ करते हैं। इसी का नाम संस्कार है।"

मैंने कहा—"इस से मैं ने तो जरा भी संस्कार के आशय को नहीं समझा।"

लोना बोली—"जैसे किसी के घर पुत्र जन्म हुआ, कई आदमी उसके यहाँ आये। वेद मंत्र पढ़कर हवन किया और सबने मिलकर उस बच्चे का नाम करण किया। उसके कान

में कह दिया कि तेरा नाम आज से देवदत्त हुआ। बात तो साधारण थी मगर बच्चे ने बाद में उस नाम के भ्रम को इतना दृढ़ कर लिया कि वह अपने आप को देवदत्त समझने लगा और वह देवदत्त पूर्ण होगया। उसे इसका इतना अभिमान होगया कि यदि कोई व्यक्ति देवदत्त का नाम देकर गाली दे तो वह न केवल बुरा मानेगा किन्तु लड़ने को तत्पर होगा क्योंकि नाम के ख्याल ने दृढ़ होकर उसके हृदय में स्थान कर लिया है। इसी प्रकार दूसरे संस्कारों का भी हाल है। यह सामाजिक नियम के अनुसार सांसारिक जीवन व्यतीत करने के लिये सिद्धि प्राप्त करना है। यह फिलोसफी का रहस्य है। ठीक ऐसे ही दूसरी सिद्धियों को समझ लो।"

मैंने कहा—"तब तो आप की समझ में सिद्धि शक्ति केवल विशेष संकल्प के परिपक्व करने ही का नाम है।"

लोना बोली—"बस। बात केवल इतनी ही है।"

मैं ने पूछा—"यह तो कोई बात नहीं हुई। इससे आदमी किसी को मोहित कैसे कर सकेगा, कैसे मारेगा और कैसे किसी के चित को उचाट करेगा।"

लोना हंसी—"सरल स्वभाव राजकुमारी! क्या तू अब भी इतना नहीं समझती कि यह दुनियां संकल्प की दुनियां है। यहाँ हर जगह संकल्प ही का तो कारोबार होता है। तू सहानुभूति और प्रेम के विचार को दृढ़ करके विशेष ढंग से किसी को देखना आरंभ कर। वह तुम्हारे प्रेम का दम भरने लगेगा। शत्रु भाव को हृदय में जमाने से यदि किसी की ओर दृष्टि की जाय तो वह यों ही शत्रु हो जायेगा। तू जिस समय चाहे उसी समय उसकी साधारण रूप से परीक्षा कर सकती है।"

मैं ने कहा—"यह बात समझ में आती है।"

लोना बोली-"फिर मंत्र शास्त्र के मंत्र जंत्र की सिद्धि भी

केवल मन के दृढ़ और एकाग्र विचार पर निर्भर है। जिस व्यक्ति का जो ख्याल बहुत पक्का होगा उसी के अनुसार उस में धैर्य होगा और उसे उसी के अनुसार सफलता और असफलता मिलती रहेगी।"

मैं बोली—"निस्संदेह यह ठीक है मगर इसकी सहायता से कोई किसी को मार कैसे सकता है?"

लोना फिर मुस्कराई। क्रोधी का हृदय क्रोध के कारण विष से भर जाता है। यदि क्रोध अधिक विषैला है तो उसके प्रभाव से उसकी छाती का दूध जहरीला हो जायगा और जिस समय उसकी गोद का बच्चा उस का दूध पीयेगा मर जायगा अथवा रोगी हो जायगा और भी इसी तरह।"

मैंने कहा-"बच्चे के उदाहरण में यह किसी अंश तक ठीक हो सकता है मगर क्या वह औरों पर भी लागू होता है?"

लोना ने उत्तर दिया-"क्यों नहीं! तुम घृणा के साथ किसी से व्यवहार करो वह घृणा करेगा। प्रेम करो वह प्यार करने लगेगा। सिद्धान्त तो एक ही है। हाँ, क्रियात्मक ढंग की कमी वेशी और संकल्प की दृढ़ता और निर्बलता का अंतर रहेगा?"

मैंने कहा - "इसे भी मैं ठीक समझती हूँ। लेकिन संकल्प से किसी को मारना कैसे संम्भव है?"

लोना ने उत्तर दिया-"जैसे बच्चे के दूध का उदाहरण अभी दिया गया है। आदमी शत्रुता के प्रभाव में आकर शत्रु को ढेले, पत्थर, तलवार या कटारी से मार देता है उसी तरह यदि उसके हृदय से लगातार किसी के विरुद्ध शत्रुता के ख्याल की धार निकल कर उस पर आक्रमण करती रहे तो वह भी मर जायगा। ख्याल भौतिक (माद्दी) वस्तु है। पानी की धार की तरह वह निकलती रहती है और जिस को उसका केन्द्र बना लिया गया है वह उसके प्रभाव के आते आते किसी न किसी

चित्त की ख्याली धार था। उसके उत्तर में राम के सहायकों को गरुड़ बाण चलाने की आवश्यकता हुई। तब उसका जादू दूर हुआ। इसी प्रकार रावण की तमाम सेना उसके चित्त के ख्याली रूप थे। उसने अनगिनत रूपों में अपने आपको ख्याली तौर पर बना लिया। तुम से खोल खोल कर क्या कहें। ईश्वर तो एक ही है। हम तुम सब लोग क्या हैं! उसी के हृदय से निकले हुये ख्याली रूप हैं। शास्त्रों में लिखा है—"वह एक था। उसने कहा मैं अनेक हो जाऊँ" और समस्त जगत उस से उत्पन्न हो गया। मनुष्य स्वयं क्या है! उसी का तो बेटा और उसी के रूप वाला है। जो काम ईश्वर विस्तृत पैमाने पर करता है मनुष्य उसी को छोटे पैमाने में करता है। क्या हम व्यवहारिक जगत में हम तुम हजारों और लाखों रूप नहीं रखते। हम किसी की बेटी, पोती, बहिन, बुआ, मौसी माँ, दादी, नानी आदि आदि हैं।

आखिर हम को भी तो लोग विभिन्न रूपों में देखते हैं। हम एक होती हुई अनेक हैं। इसे तो तुम समझ सकती हो। तनिक चित्त वृतियों के उभारने और उसे शक्ति देकर एकाग्र करने की आवश्यकता है। यदि हम स्वयं सिद्धि शक्ति वाली हो जांय तो जो रूप चाहें अभी धारण कर सकती हैं। इसी रूप धारण करने का नाम माया है। माया शक्ति है और वह केवल मारे चित्त की ही शक्ति है। वह जो न चाहे कर दिखाये। रावण माया अर्थात् शक्ति वाला था। यदि उसने ऐसा किया तो आश्चर्य की क्या बात है!"

मेरी आँख खुल गई। बुद्धि को गति मिली।

मैंने कहा—"सचमुच तुम सच्ची गुरु हो। मंत्र शास्त्र की ज्ञाता हो। तुम धन्य हो। मैं हर्ष पूर्वक तुम्हारी शिष्य होना स्वीकार करती हूँ।"

करता है। जब किसी दूर वासी लड़के पर आपत्ति आती है और वह माँ को याद करता है तो माँ प्रभावित होकर कहने लगती है कि मेरे बेटे पर कोई कष्ट आगया और वह मुझे याद कर रहा है। कभी कभी जिस की याद की जाती है उसके हृदय पर चोटें लगती हैं कि हिचकियां आने लगती हैं। चेचक और छुआ छूत के रोगों की गति भी इसी तरह काम करती है। एक दो नहीं इसके हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं।"

मैंने पूछा-"आप के कहने से सिद्ध होगया कि एकाग्र चित्त के ख्याल में समस्त सिद्धि और शक्ति रहती है। अब यह बताइये कि इस के साधन का उपाय क्या है?"

लोना बोली-'जो पथ्य और नियम योग के लिये आवश्यक हैं वह इसके लिये भी आवश्यक हैं। साधक गंभीर स्वभाव, नियम पर चलने वाला, निर्भय और संयमी हो। वह अपने बिखरे हुये विचारों के एकाग्र करने की योग्यता रखता है तो कुछ ही दिनों में सिद्धि प्राप्त कर लेगा। और यदि इस गुण से रहित है तो समय लगेगा। कुछ को सारी उम्र परिश्रम करते रहने से भी सिद्धि नहीं होती।'

मैंने कहा—"यह क्या बात है? एक मनुष्य ने जो किया है उसे प्रत्येक मनुष्य करसकता है क्योंकि मैंने सन्यासी और साधुओं को कहते सुना है कि मनुष्य का हृदय समस्त शक्तियों का भंडार है। सारी शक्तियाँ सुप्त दशा में पड़ी हैं।

लोना हँसी-"बात ठीक है और बात गलत है। यह सम्भव भी है और असम्भव भी है।"

मुझे आश्चर्य हुआ—"आप यह क्या कहती हो? दिन और रात दोनों एक साथ कब रह सकते हैं। प्रकाश और छाया को किसने एक जगह देखा है!"

लोना मुस्कराई-"राज कुमारी! तुम अभी अनजान् अवय-

रूक और अनुभवहीन हो। इन संकेतों और बारीकियों की समझ उस समय आती है जब मनुष्य पक्का और विवेकी हो जाता है। तुम्हारे प्रश्न के मैं कई उत्तर दे सकती हूं। तुम को ख्याल रखना चाहिये कि यह दुनियां द्वन्द अर्थात प्रतिकूल और अनुकूल सामान का समूह है। यहाँ चिराग के नीचे अंधेरा, प्रकाश के साथ छाया, भलाई के साथ बुराई, और विष का साथी अमृत है। रात दिन दुख सुख, जीवन मृत्यु, गर्मी सर्दी सब ही को एक साथ देखा जाता है। यही तो कारण है कि इसे शास्त्रों ने द्वन्द का स्थान बताया है। यह जगत माया शक्ति का खेल है। माया स्वयं क्या है! वह सत भी है और असत भी है। सत इस कारण से है कि दिखाई देती है। कौन ज्ञानी छाती पर हाथ रख कर कह सकता है कि वह माया को नहीं देखता। माया नाशवान भी प्रतीत होती है, यह तो समझ सकती हो।"

मैं इस आश्चर्य जनक बात को सुनकर चकित रह गई।

मैंने कहा–"तो फिर यह झूठ है कि मनुष्य सब कर सकता है?"

लोना बोली–"सच और झूठ दोनों ही हैं। यदि बिल्कुल ही सच होता तो प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करके रामचन्द्र जैसा बन जाता मगर इतिहास में एक के अतिरिक्त दूसरे राम का पता नहीं है। हाँ, अपने ढंग पर हर व्यक्ति को विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर लेना सम्भव अवश्य है मगर इसके लिये जन्म जन्मांतर और समय की आवश्यकता है। साधन के लिये समाहत चित्त की जरूरत है। जिसका चित्त समाहत नहीं है वह चाहे पचास वर्ष रगड़ता रहे, वह कुछ भी न कर सकेगा। इसी कारण से तो मैं संस्कारी शिष्य की खोज में थी। समय के बाद तुम्हारी सूरत देखी। मेरे लिये वह दर्पण थी। उसकी अन्तरीय दशा का प्रतिबिम्ब मेरे चित्त पर पड़ा और मैं ने तुम

को चुन लिया।"

मैंने गर्दन झुकाई—"तुम सच कहती हो। यदि सम्भव होता तो सब राजा ही बन जाते मगर राजा तो उसे बनना है जिस को ब्रह्मा ने इसी काम के लिये विशेषता दी है। मैं समझ गई। अब मुझे अपना शिष्य बनाइये।"

लोना ने मुझ से व्रत रखवाये। खाने पीने में समता और कमी का आदेश दिया। एकान्त में बैठकर साधन सिखाया। इस कार्य में ६ महिने व्यतीत हो गये और एक तरह पर मैं पूरी जादूगरनी बन गई। क्या मजाल कोई मुझे देखे और मेरे वशीभूत न हो जाय। जिस रोगी को केवल आँख से देखती वह उसी समय अच्छा हो जाता। यहां तक कि जब मैं शिकार को जाती शेर और चीतों को केवल एक दृष्टि से देखने पर वशीभूत कर लेती और उनका कान पकड़ कर अपने नौकरों के हवाले कर देती और ये पशु पक्षी बेसुध बन जाते। मेरे इन कृत्यों को देखकर सब आश्चर्य करते। मंत्रीगण आदि सब मेरा नाम सुनकर कानों पर हाथ धरते और क्या मजाल थी कि कोई मेरी आज्ञा उल्लंघन का साहस करता।"

लोना को महल में आये धीरे धीरे दो वर्ष हो गये। इसके बाद मैंने देखा कि वह बेचैन रहने लगी।

मैंने पूँछा—"आपके मन की अब क्या दशा है?"

लोना ने उत्तर दिया—"मैं अब तुम से विदा होना चाहती हूँ। गुरु ऋण मैंने चुका दिया। तुम्हें अपनी गुप्त विद्या सिखा दी। अब देर तक यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं है।"

मैंने कहा—"आपका वियोग असहनीय होगा। फिर भी कारण क्या है? क्या मैंने कोई अपराध किया है जो व्याकुलता का कारण है?"

लोना हंसी—"योग और वियोग आपेक्षिक शब्द

हैं। आदमी मर जाता है। कौन उसका साथ देता है। यह मूर्खों के कहने की बातें हैं। मेरे जाने का कारण यह है कि मेरा प्रारब्ध कर्म भोग देने पर आया है। भाग्य से कौन लड़ सकता है! मैं पहिले जन्म में रानी होने की इच्छुक थी। अब वह विचार मुझे सता रहा है। मन से तो मैं यही चाहती थी कि योग का साधन करके मुक्ति प्राप्त करूँ मगर कर्म किसी और ही तरह का ख्याल दिला रहा है।"

मैंने कहा--"आप धैर्य रखिये। मैं इस देश की रानी आपको बना दूँगी।"

लोना कहकहा मार कर हंसी--"यह तुम्हारी दया है। मैं काम रूप देश की रानी नहीं होना चाहती। मुझे पंजाब में रहने का शौक है क्योंकि वहां के आदमी अच्छे प्रसन्न चित्त और मिलनसार हैं। मैं वहाँ की रानी बनूं तब तो बात है।"

मैंने पूछा-"यह किस तरह होगा?"

लोना बोली—"तुम स्वयं अपनी आँखों से देखोगी। मैं हर रात को अकेली बैठ कर साधन करती हूँ और अपने संकल्प की धार को पंजाब के राजा की ओर प्रति दिन भेजती रहती हूँ। वह स्वयं खिंच कर यहां आवेगा और मुझे रानी बनाकर ले जायगा।"

यह बड़े आश्चर्य की बात थी। पंजाब की यात्रा कम से कम दस महीने की थी। और आदमी तो इस को असम्भव बताते मगर मैं लोना का चमत्कार देख चुकी थी। मुझे विश्वास था कि वह जो चाहे कर दिखावे। इस लिये चुप रही।

दिन जाते देर नहीं लगती। दस मास के पश्चात पंजाब का राजा सेना लिये हुये कामरूप में आया। मेरे पिता डर गये कि कहीं आक्रमण करने की नीयत से न आया हो। अपने आदमी भेजे। उससे मिले। आने का कारण पूछा। जब

ज्ञात होगया कि वह केवल भ्रमण के उद्देश्य से आया हुआ है तो इनकी जान में जान आई। उस राजा का नाम शालवाहन है जिसने शाका सम्वत् प्रचलित किया है और जिसकी राजधानी स्यालकोट है।"

मेरे पिताजी ने उसको अपने राज भवन में अतिथि बनाया। वह पाँच सात दिन ठहरा। अन्त में जब उसकी दृष्टि लोना से लड़ी वह आपे को भूल गया। मेरे पिताजी से इसकी प्रार्थना की और लोना के साथ विवाह करके वह पंजाब की ओर लौट गया। लोना चमारी सचमुच पंजाब की रानी हो गई और मुझे वियोग का दुख दे गई।

प्रथम भाग समाप्त

द्वितीय भाग

प्रथम प्रकरण

रूप और प्रेम

रूप निरख और नाम ले, मोह मया संसार।
रूप नाम साधन करे, जावे भव जल पार॥

"जब मेरी आयु सोलह वर्ष की हुई, मेरे शरीर रूपी खेत पर सौंदर्यरूपी मेह बरस बरस कर उसे प्रफुल्लिता तथा बढ़ावा देने लगा। जो देखता आश्चर्य करता था। भारतवर्ष के और भागों के विषय में तो कुछ नहीं कह सकती मगर कामरूप देश में तो एक भी स्त्री ऐसी नहीं थी जो मेरी बराबरी करती। गोरा रंग, छरहरा शरीर, हिरण जैसी आँखें चीते जैसी पतली कमर हंस की सी चाल, चन्द्रमा जैसा चमकता हुआ मुखड़ा, सुडौल हाथ पाँव, तोते की तरह लम्बी नासिका, लाल होंठ, तिरछी कमान के समान भौंयें। रूप तो प्रकृति से मिला था मगर लोना की शिक्षा ने सोने पर सुहागे का काम किया। मुझ में संयम की शक्ति आगई थी। मैं कम बोलती थी क्योंकि लोना ने मुझे समझा दिया था कि जो व्यक्ति अधिक बोलता है, उसके मानसिक भावों में निर्बलता आ जाती है और वह दूसरों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। शिव भगवान के एकाक्षरी मन्त्रों की तरह मैं 'हां' और 'नहीं' के अतिरिक्त बहुत कम शब्द मुँह से निकालती थी मगर जब मैं बोलती थी तो लोग कोयल की आवाज को भूल जाते थे। होठों का खुलना कमल की पंखड़ियों के चटखने के समान था। स्त्री और पुरुष दोनों मुझे देखकर बलायें लेते थे। उनको गर्व था कि उनकी राजकुमारी

दुनियाँ में एक मात्र रूपवती है।

पिताजी को चिन्ता हुई कि मेरा विवाह किसी अच्छे शक्ति शाली राजा के साथ कर दिया जाय। मन्त्रियों ने राय दी कि मनीपुर का राजा अधिक उपयुक्त है क्योंकि उसका राज बड़ाहै और अर्जुन का वंशज होने के कारण क्षत्रियों में उच्च मान्यता रखता है। मगर उसकी आयु बहुत अधिक थी। कितने अफ-सोस की बात है कि राजाओं के लड़के और लड़कियाँ देश और राजनैतिक विचार के कारण बलिदान कर दिये जाते हैं इन गरीबों को इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं है कि अपनी पसन्द के अनुसार विवाह कर सकें। यह जगत विचित्र स्थान है। यहां स्वतन्त्र तो गुलाम हैं और गुलाम स्वतन्त्र है। राजे शाशित और शाशित प्राणी राजे हैं। प्रजा को अधिकार है कि जिसको चाहे अपने पुत्र पुत्रियों को ब्याह दें मगर राजाओं की सन्तान बेवश है। इसी एक बात पर विचार करने से ज्ञात हो सकता है कि उनकी सभ्यता कैसी होगी ?"

लड़कियों के लज्जा के भाव लोना की शिक्षा से मुझसे बिल्कुल चले गये थे। जब मैंने सुना तो पिताजी को समझाया कि ऐसा सम्बन्ध मुझे स्वीकार नहीं है। वह तो किसी प्रकार समझाने बुझाने से मान गये मगर दरबारियों को बुरा लगा। "काजी जी क्यों दुबले ! शहर के अन्देशे से" मगर वे मेरी हठ को जानते थे। उनकी एक न चली और वह चुप चाप रह गये।

लेकिन शास्त्र कहते हैं कि प्रकृति पुरुष ही के लिये है। दुनिया की कोई वस्तु अपने लिये नहीं होती। भोगने वालों के लिये उसकी व्यवस्था होती है। मकान रहने वालों के लिये बनता है। भोग भोगने वालों ही के लिये हैं। मैं प्रकृति और शक्ति का रूप थी, कैसे सम्भव था कि मैं अकेली जीवन व्यतीत

करने की इच्छुक रहती। स्त्रियां विशेष रूप से दिखावा पसंद करती हैं। वह चाहती रहती हैं कि कोई व्यक्ति उनके रूप लावण्य का कदरदान हो। उनके प्रेम का दीवाना बने। जैसे कंवल के फूल के चारों ओर भौंरे मंडलाया करते हैं, कोई व्यक्ति उनके भी रूप रंग को देखे। स्त्रियों में प्रसंशा सुनने और चापलोसी कराने की स्वाभाविक भावना होती है। यह उनकी विशेषता है। कुरूप से कुरूप स्त्री रोज दर्पण में अपनी शक्ल देखकर बनाव सिंगार किया करती है मै भी इस कमजोरी से रहित नहीं थी मगर बूढ़े पति को पसन्द करने वाली नहीं थी।"

मेरे पिताजी के दरबार में एक साधारण स्थिति का क्षत्री पुत्र आया जाया करता था। वह सुन्दर और स्वस्थ था। मै उसकी सजधज को पसन्द करती थी। यह कहना कि साधारण स्त्रियों की तरह मैंने अपना दिल उसके प्रेम में फंसा दिया था बिल कुल गलत होगा। वह अच्छे रंग रुप का था इस कारण अन्तर्राय ढंग से वह मेरा प्रेमपात्र बन गया था। इसके अतिरिक्त मेरी यह हार्दिक इच्छा थीं कि यदि किसी को पति बनाऊँ तो वह मेरे ही आधीन रहे। मुझ पर हावी न हो जाय। यह निर्धन था। सम्भव नहीं था कि कभी भूलकर उद्दन्डता करता। इसके अतिरिक्त यह विचार सताता रहता था कि मैं पिताजी के बाद राज्य की मालिक बनूँ। अधिकार और शासन से अधिक प्रिय वस्तु कोई वस्तु नहीं होती। मैं लोना के उदाहरण को देख चुकी थी। उसके समस्त संस्कार मुझ में प्रवेश कर गये थे। कहावत प्रसिद्धि है—"जैसा गुरु वैसा चेला।" पिताजी के ऊपर अपने विचार का जादू करती रहती थी ताकि वह किसी सम्बन्धी लड़के को दत्तक पुत्र न बनावें और मुझे काम रुप देश का अधिकारी बना जाँय यद्यपि उन्होंने कभी मन्त्रियों

से इस विषय पर वार्तालाप नहीं की थी फिर भी मुझे जानकारी थी कि वह मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करेंगे। एक ओर तो मैं यह जादू किया करती थी दूसरी ओर उस क्षत्री पुत्र पर भी अपना प्रभाव डालती रहती थी। इस साधन में दुचिताई अवश्य थी। मगर चूंकि मैं एक तरह जादू की कला में सिद्धि प्राप्त कर चुकी थी और वह सिद्धि अभी प्राप्त की थी, उसमें पूरी शक्ति थी। जादू का तीर निशाने पर बैठ गया। लाघव, जो उस क्षत्री पुत्र का नाम था, जब महल में आता, सबसे आंख चुरा कर मुझ ही को देखता रहता। मैंने यह भी सुना कि वह मेरी प्रशंसा में कवित्त बनाया करता था।"

"मेरा स्वभाव स्वतन्त्रता प्रिय था। एक दिन बाँदी को भेजकर मैंने लाघव को बुला भेजा। वह आया मगर डरा हुआ था क्योंकि दिल को दिल से राहत होती है। उसने आकर मुझे नमस्कार किया और सिर नीचा करके खड़ा होगया।"

मैंने कहा—"लाघव! मैं तुमसे एक प्रश्न करती हूँ। सच सच कहना। जिस तरह कोई व्यक्ति मृत्यु के समय अपना भेद बता जाता है, वैसे ही तुम स्पष्ट बताना। ईश्वर के सामने मनुष्य हृदय की बात को नहीं छुपाता। यद्यपि मैं ईश्वर नहीं हूँ मगर तुम्हारी राज कुमारी हूं। मुझे हर तरह पर अधिकार है कि तुम्हारा हाल जानूं।"

लाघव बोला—"आप मेरी दृष्टि में साक्षात सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी हो। जो आप पूछेंगी मैं उसे प्रगट कर दूँगा। देवी भगवती से किसने हृदय की बात छुपाई या छुपाने की शक्ति रखता है।"

मैं जोर से खिलखिला कर हंस पड़ी।"मैं देवी नहीं हूँ। साधारण स्त्री हूँ।"

लाघव ने उत्तर दिया—"मानो तो देव नहीं तो पत्थर।

मैंने सच्चे हृदय से सच्ची भक्ति और सच्ची श्रद्धा से आप को देवी ही मान लिया है। सब मानने की बात है। ईश्वर को किसने देखा है मगर मानते हैं कि वह है। इस के अस्तित्व से किसी को इंकार नहीं है। यही दशा मेरी भी है"

जो कुछ मैं जानना चाहती थी सब इन वाक्यों में आगया। लेकिन कौन ऐसी स्त्री है जो किसी पुरुष के काबू में सरलता से आना चाहेगी! स्त्री हजार किसी पर आसक्त हो मगर उसे सदा अपनी कमजोरी के प्रगट करने में लज्जा रहती है। वह हार्दिक भावों को छुपा रखती है और जब तक पुरुष उसके वशीभूत होने को प्रगट न करले तब तक मुंह खोलने की शपथ रहती है।

हाव भाव और संकेत इस उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं। मुस्कराना, आँखें दिखाना, क्रोध और घृणा प्रगट करते रहना यह स्त्रियों का गुण है। जिस तरह वह पर्दे में रहती हैं वैसे ही हृदय के भेद को भी छिपा रहती हैं। यदि किसी स्त्री को इस गुण से वंचित देखो तो समझलो कि अभी तक वह सच्ची स्त्रियों की गिनती में शामिल होने का अधिकार नहीं रखती।"

मैं फिर मुस्कराई--"तुम तो कवियों, भक्तों और ज्ञानियों जैसी बातें बनाते हो। आखिर दरबारी हो। दरबारियों का स्वभाव मक्कारी और चापलूसी का होता है। क्या मेरा यह विचार सच है?"

लाघव डरा—"मेरी वार्तालाप का गलत अर्थ लगाया गया है। मैं चाहे बुरा समझाऊं मगर मैं आप के सामने झूठ नहीं कह सकता। और न मुझे ऐसा साहस हो सकता है।"

मैंने आँखें बनाई—"तुम लाख अच्छे हो लेकिन पुरुषों का मुझे कभी विश्वास नहीं है। तुम केवल मेरे प्रश्न का उत्तर दो और बस।"

लाघव मेरे क्रोध से उत्तेजित नहीं हुआ। डरता हुआ बोला—"कहिये, आप क्या पूछती हैं?"

मैंने कहा—"प्रायः मैं देखा करती हूँ कि जब तुम महल में आते हो, मुझे सदा तिरछी चितवन से देखा करते हो। ऐसा क्यों है? और क्या यह चेष्टा अनुचित नहीं है? और तुम दण्ड पाने के अधिकारी नहीं हो?"

लाघव ने कुछ देर के बाद कहा—"जो आप कहती हो वह सच है। इस के सच होने में तनिक भी संदेह नहीं। मैं अपराधी हूँ। जो चाहिये दण्ड दीजिये।"

मैंने कहा—"प्रश्न का उत्तर तो तुमने नहीं दिया और अपराध स्वीकार कर लिया।"

लाघव बोला—"इसके अतिरिक्त और मैं क्या कह सकता हूँ। मैंने पहिले ही निवेदन कर दिया है कि मैं आपके सामने जिह्वा को झूठ बोलने के पाप से दूषित न करूंगा। एक पाप तो किया गया फिर दूसरे की उसमें क्यों बढ़ोतरी की जाय।"

मेरी आँखें तिलमिला गईं—"अन्त में इस पाप के पर्दे में कोई कारण भी तो होना चाहिये?"

लाघव ने उत्तर दिया—"कारण अवश्य है। बिना कारण के कोई काम नहीं होता। यह प्रकृति का माना हुआ नियम है और कारण यह है कि जिस ईश्वर ने आपको इतना सुन्दर बनाया उसी ने मुझे इस चित्ताकर्षक दृश्य के देखने को आँखें भी दीं। वाटिका के सुन्दर पुष्प को कौन नहीं देखता। चकोर से कहो कि वह चन्द्रमा के देखने से आंखें बन्द करले, मगर यह असम्भव है। भौंरे को कमल के दृश्य से हजार बार रोको मगर वह कैसे रुक सकता है!"

मैंने स्वर को अधिक कठोर बनाया—"बदजबान! यह धृष्टता के शब्द हैं। तेरी जिह्वा इस योग्य है कि वह काट

ली जाय।"

लाघव ने कहा—"आपको अधिकार है। पापी ईश्वर के दरबार में पाप को मान लेने पर क्षमा किया जाता है। आपने पहिले मुझे सच बोलने का आदेश दिया। मैंने सच सच कह दिया। यदि मैं दंड का अधिकारी हूं तो आप देर न करें।"

मैं हंसी—"तुम सच कहते हो। इस में कुछ मेरा दोष है।"

इन शब्दों ने लाघव के हृदय को हर्ष से भर दिया। उसकी सूरत से प्रसन्नता प्रगट होने लगी। वह मुझे भाँप गया और मैं दो चार क्षण अपनी इस दुर्बलता पर अफसोस करने लगी।

मैंने पूछा—"प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं दिया गया।"

"लाघव उड़ती चिड़िया का पहिचानने वाला शिकारी था। उसने समझ लिया कि मुझे भी उससे आसक्ति है मगर दरबारी होने के कारण वह स्पष्ट रूप से अपने विचार को प्रगट नहीं करना चाहता था और मैं चाहती थी कि वह उसे प्रगट करदे।"

लाघव ने उत्तर दिया—"अपराध और अपराध का कारण बता दिया गया। अब इससे अधिक क्या सुनना चाहती हैं?"

मैंने कहा—"अपराध का कारण नहीं बताया गया।"

लाघव बोला—"कौन व्यक्ति दुनियां में ऐसा है जो अनुपम रूप को नहीं देखना चाहता।"

मैं हंसी—"तब यह कहो कि तुम सौन्दर्य के पुजारी हो।"

लाघव का साहस बढ़ चला था। उसकी आशा की कली यद्यपि खिलने की दशा में नहीं आई मगर जिस तरह ओस की नन्हीं बूंदें तरावट देकर हराभरा कर देती हैं वही उसकी भी दशा थी।"

लाघव ने कहा—"मैं अब क्यों अपने भाव को छिपाऊं।

पुरुष तो मैं पहिले ही से हूं। अब जो चाहे आप दंड दीजिये। मैं केवल सौन्दर्य का पुजारी नहीं हूँ किन्तु सुन्दरी पूजक भी हूँ। यह मेरी पूजा उन मूर्ख पुजारियों जैसी नहीं है जो काली, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी और तीस करोड़ देवताओं को पूजते हैं। मैंने केवल एक ही देवी का इष्ट बांधा है और यही ख्याल मेरे जीवन का कारण है और यही मृत्यु का भी कारण होगा।"

मैं हंसी—"तनिक मैं भी तो सुनूं कि वह भाग्यशाली देवी कौन है जिसके मन्दिर की पूजा का काम तुम्हारे सुपुर्द हुआ है?"

लाघव बोला—"ओह! यदि मैं पुजारी हो गया होता तो क्या बात थी। अभी तक यह अवसर मुझे नहीं दिया गया। कौन जाने वह प्राप्त भी होगा या नहीं।"

मैंने देर के बाद कहा—"लेकिन तुमने देवी का नाम अब तक नहीं बताया।"

लाघव ने उत्तर दिया—"देवी स्वयं अन्तरयामी है। यदि मैं उसे कहूं कि वह नहीं जानती तो फिर वह देवी कैसी हुई?"

मैं मुस्कराई—"मगर मैं तो मानव हूं। मैं तो गुप्त भेद को नहीं जानती। मुझसे कहने में क्या हिचक है?"

लाघव को उत्तर देने का समय नहीं मिला। मेरी बांदी आगई। मुझसे कहा कि राजा साहब बहुत बीमार हैं। आपको बुलाते हैं।"

मै ने उससे कहा—"कल इसका उत्तर सुनूंगी। अब तुम जाओ। वह प्रसन्न होकर चुपचाप चला गया।"

दूसरा प्रकरण

मृत्यु शय्या

मरना है जीना नहीं, मरना विस्वा बीस।
आज मरे के काल हम, काढ़ काढ़ कर खीस॥

मैं उसी समय पिताजी को देखने गई। उनको हृदय रोग पहिले से था। डबडबाई आँखों से मुझे देखा।

पिताजी ने कहा—"प्रिये महेशमति! अब मेरे कूच का समय आगया। तू मां की ओर से तो पहिले ही अनाथ हो गई थी, अब मैं भी अनाथ कर रहा हूँ।"

मैं बोली—"चिन्ता न कीजिये। यह रोग आपको बहुत समय से है। इसका दौरा हुआ ही करता है। अभी वैद्यों के इलाज से आराम हो जायगा।"

पिताजी हंसे—"मैं यम दूतों को पलंग के सिरहाने और पांयते देख रहा हूँ। तुम लोगों को वह दृष्टिगोचर नहीं होते। उन्हें केवल थोड़े से मरने वाले ही देख सकते हैं। वैद्यों ने बल देने वाली दवा दी है ताकि मंत्रियों को तुम्हारे सामने अन्तिम वसीयत सुना जाऊँ। इसी लिये बुलाया है।"

मैं रोने लगी। "क्या आप सचमुच मुझे अनाथ कर जायेंगे? अभी तक तो किसीके सुपुर्द भी नहीं किया है।"

पिताजी बोले—"मुझे पलंग के नीचे उतार दो ताकि बन्धन में प्राण न निकले।"

विवश मन्त्रियों ने ऐसा ही किया। मैं उनके पास जमीन पर बैठ गई। नाड़ी को टटोला। वास्तव में वह बैठ गई थी। पांव छुये तो वह बर्फ की की भांति ठंडे थे। केवल चेहरे पर गर्मी थी और नेत्र विशेष ढंग पर चमकीले बन गये थे।

पिताजी केवल कर्त्तव्य की ओर ध्यान देकर बोले—"भाइयो तनिक ठहरो। मैं देख रहा हूँ कि तुम मेरे प्राण लेने को आये हो। मेरे नेत्र आत्म दृष्टा बन गये हैं। मुझे अन्तिम कर्त्तव्य पूरा कर लेने दो। फिर मैं चलने को तैयार हूँ।"

पिताजी फिर मुझसे बोले—"बेटी! दुनिया में न कोई सदा रहा है न रहेगा। अमर पद केवल स्थित प्रज्ञ के लिये

है। सूर्य प्रति दिन उदय होता है। प्रति दिन अस्त होता है। आँख रखने वालों को अपने नित्य के चक्र से चेतावनी दे जाता है कि हर सुबह की शाम है। दिन की रात है। जीवन का परिणाम मृत्यु है। बसन्त के बाद पतझड़ की ऋतु आती है। गर्मी के बाद सर्दी आती है। युवावस्था का बुढ़ापे से और बुढ़ापे का मृत्यु से मिलाप होती है। इस परिवर्तन शील भौतिक मन्डल में किसी को अमरता प्राप्त नहीं होसकती। जिस व्यक्ति ने दुनिया में आकर भलाई नहीं की है वह खाली हाथ निराशा और अफसोस के साथ जाता है। यह लोक कर्म क्षेत्र हैं। लोक के कर्म का फल परलोक में मिलता है। जिसने जैसा यहाँ किया है वहां उसे वैसा ही भोगना पड़ेगा। दुनिया परलोक की खेती है। धन्यवाद है मैंने किसी तुच्छ आदमी के साथ भी अन्याय नहीं किया न किसी को सताया। न किसी पर अत्याचार किया। मैं खुश हूँ और खुशी खुशी यहां से कूच करता हूँ। बेटी! तुझे मेरे उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिये।..."

वैद्य जो इलाज करते थे बोल उठे—"महाराज! समय थोड़ा है। जरुरी बात कीजिये। राजकुमारी महेश मती अच्छे माता पिता की अच्छी पुत्री है। उसे भलाई बुराई की समझ है।"

पिताजी ने कहा—"तुम शीघ्रता न करो। मुझे अन्तिम वचन सुना लेने दो।"

फिर उन्होंने मेरी ओर रुख किया—"बेटी! राजा के लिये न्याय से बढ़ कर और कोई धर्म नहीं है। एक न्याय योगियों के हजारों जप तप से बढ़ कर है। मेरे कोई लड़का नहीं है जो आज से राज्य का उत्तराधिकारी होता। और न

तेरे अतिरिक्त कोई और सन्तान है। मन्त्री चाहते हैं कि मैं किसी को अपना उत्तराधिकारी कर जाता मगर क्या जानूँ कौन शक्ति है जो मुझे इससे बराबर रोकती रहती है।"

मैं जानती थी कि वह शक्ति मैं ही थी और पिताजी उसके प्रभाव में आये हुये थे।

पिताजी ने फिर कहना प्रारम्भ किया-" राज्य अधिकारी संतान के न होने पर मैं तुझ को अपना उत्तराधिकारी नियत करता हूँ। तुझे अधिकार है जिस से चाहे उससे विवाह करले ताकि मेरे वंश का अन्त न होने पावे। लेकिन चूंकि तू योग सिद्धि में व्यस्त रहती है राज मुकट तो अपने सिर पर रख -ना ही होगा। लेकिन यदि तुझे विवाह करना स्वीकार न हो तो मैं अधिकार दिये जाता हूं कि अपने बाद जिस को चाहे अपना उत्तराधिकारी बनाजाय।"

मैंने निवेदन किया—" आप की आज्ञा का अक्षर सः पालन होगा।"

मैं मन ही मन मेंप्रसन्न हुई कि मुंह मांगी इच्छा पूर्ण हुई। मेरे मन में शोक किचिन्त मात्र नहीं था। क्या ऐसी संतान भी अच्छी कही जा सकती है। धिक्कार है मुझ पर और मेरी कामना पर! आज मैं इस घटना को सोच कर लज्जित हूं। पिता ने तो अपना कर्तव्य पूरा किया लेकिन क्या मैंने संतान के धर्म को भ्रष्ट नहीं किया?

पिताजी मंत्रियों से बोले—" भाइयो! अब देर न करो। महेश मति की कमर से खंजर बांधो। शाही गदा हाथ में दो। मुकट सिर पर रक्खो ताकि मैं अपनी आखों से उसको इस रूप में देख लूं।"

ऐसा ही किया गया।

पिताजी फिर उनसे बोले–"आज से मेरे स्थान पर यह तुम्हारी रानी है। जिस तरह तुमने जीवन भर मेरी सेवा और आज्ञा पालन किया है इसके साथ भी वही व्यवहार करना। नेक राय देने में कमी न करना। यह जो कहे उस का पालन होता रहे। कोष खाली न रहने पाये। सेना सदा सुसज्जित रहे। किलों की मजबूती में किसी तरह का अंदेशा न हो। प्रजा की खुशहाली का हर समय ध्यान रहे। कोई व्यक्ति धर्म पथ से हटने न पाये। जिस देश के आदमी मिलने जुलने और मिल जुल कर परस्पर सहयोग से काम लेते हैं, शत्रु को उनपर आक्रमण करने की जुर्रत नहीं होती। सन्यासी और साधुओं की आवभगत और देख रेख को भुलाया न जाय। संतान माता पिता के आदर मान का सदा ध्यान रक्खे। यह तुम्हारे लिये अंतिम उपदेश है। तुम इस उपदेश की पाबंदी की शपथ खाओ। तब मैं प्राण त्याग दूँ।"

मंत्रियों ने गंगा जली हाथ में लेकर शपथ ली—"हम सुख में दुख में देश की समृद्धि और असमृद्धि में सदा राजकुमारी का साथ देंगे। इस में हम से कोई व्यक्ति गलती न करेगा। आप विश्वास रखिये और आनन्द से इस असार संसार को त्याग दीजिये।"

पिताजी ने संकेत किया। मैं उन के पास गई। मेरे सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। "बेटी! तुझे ईश्वर के और वफादार भाईयों के सुपुर्द करता हूँ। तू भी इनको सान्त्वना देने में भूल न करना।"

मैंने आखों से झूठे आँसू बहाकर कहा—"आपकी आज्ञा सिर माथे। मैं आखिर आप की पुत्री हूँ। आप के साथियों का ध्यान हर समय रखूंगी और बिना अपराध किसी के साथ दुर्व्यवहार न करूँगी।"

पिताजी ने कहा—"धन्य हो बेटी ! धन्य ! मुझे केवल इसी बात की चिन्ता थी और बस।"

मैंने कहा—"यथा शक्ति मैं आप के धर्म का नियमित रूप से अनुसरण करूंगी।"

पिताजी बोले-"ईश्वर तेरी सहायता करे। अच्छा भाइयो अब मेरी राम राम लो।

महेश मति अब तू राजा है। तुझ को नमस्कार है। राम-राम।"

हरि बोल हरि बोल, हरि बोल भाई।
सत चित से ले, राम शरनाई ॥

पिताजी के यह अन्तिम शब्द थे। फिर आखें चढ़ गई। चन्द्रायण लग गया। दो बार हिचकियाँ आईं और शरीर गति हीन होगया। यह उस बुद्धि मान राजा के जीवन का परिणाम हुआ। मगर वाहरे पवित्र जीवन ! किस शान्ति के साथ इस भौतिक शरीर से प्राण निकले ! न शोक न कष्ट और न जीवन का मोह ! ईश्वर सब को ऐसी अवस्था प्रदान करे।"

महल में कुहराम मच गया। मैं भी रोई मगर उन का रोना और ढंग का था और मेरा और तरह का था। उनमें बहुत से हमदर्द और शुभचिन्तक थे। मैं स्वार्थी थी और निकृष्ट कामना के वशीभूत थी।"

मंत्रियों और दरबारियों ने लाश को उठाकर आदर मान के साथ टिकटी पर रख दिया। मुझे उस दिन सिंहासन पर बिठाया गया। और उस रस्म के होजाने पर उनकी लाश को वह श्मशान भूमि में ले गये। एक सम्बन्धी ने मृतक संस्कार किया और इस तरह पिताजी की जीवन यात्रा पूर्ण हुई।

तीसरा प्रकरण

लाघव

प्रीति रीति अति है कठिन, प्रीति रीति है एक।
जो कोई समझे प्रीति को, उपजे परम विवेक॥

एक जाता है दूसरा आता है। इस संसार की यही लीला है। बाप मरा, बेटा या बेटी को उत्तराधिकार मिला। यथा रीति दस दिवस तक शोक मनाया गया। ग्यारवें दिन मैं सिंहासन पर बैठी। धनी मानी, रईस अमीर मन्त्रियों आदि की ओर से भेंट दी गईं। शहर में राजगद्दी का उत्सव मनाया गया। नाच रंग की मजलिस सजाई गई। कवियों ने मेरी प्रशंसा के पुल बाँधे। अभी मैंने राज के काम तकको नहीं संभाला था मगर उनके कवित्तों में मेरे शासन में शेर और बकरी एक घाटपर पानी पीने लगे। प्रशंसा की हद होगई। यह दुनियां बिल्कुल झूठी है। इसकी एक एक बात पर रोना आता है। इन कवियों ने तो यह समझा कि मैं बड़ी प्रसन्न हुई होंगी मगर मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर चुटकियां लेता था। जैसे छोटी बेटी का राज वैसे ही उसकी प्रशंसा। यदि यह लोग कवित्तों में मुझे सुन्दर, रूपवती बताते तो मैं शायद प्रसन्न हुई होती मगर इस प्रकार की प्रशंसा के लिये तो ईश्वर ने किसी और को उपयुक्त कर रक्खा था जिसकी जगह मेरे हृदय में थी मगर राजगद्दी के बाद मैंने देखा कि उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती थी। कौन जाने वह क्या सोचता रहता था। सम्भव है उसके मनमें यह विचार आता हो कि राज पाकर अब महेश मति उसकी ओर ध्यान न देगी। राजमद सब मदों से बुरा होता है, लेकिन यदि यह विचार रहा हो तो वह बड़ी

भूल पर था। मैं ऐसी नहीं थी। मैंने महल की रानियों का हाल सुन रक्खा था। इन्द्रिय तृप्ति के बशीभूत वह सब कुछ कर डालती हैं मगर परीक्षा के समय कबूतर की भांति आँख बदल देनी उनके लिये साधारण बात है।

मैं राज्य मिलने पर भी उसे नहीं भूली। हाँ, प्रत्यक्ष में मान सम्मान का ध्यान रखना हर हालत में आवश्यक था। मैंने हफ्तों तक उसकी ओर दृष्टि भी नहीं की और मैं इसके लिये अपने आपको दोषी नहीं ठहराती। मैं विस्तृत राज की शासक थी। प्रत्यक्ष में अन्तर आना आवश्यक था।

एक माह बीता लाघव ने मशीर के पद से त्याग पत्र दिया। साधारण नौकरों के प्रार्थना पत्र का स्वीकार करना या न करना दीवान का काम था। लेकिन चूंकि वह दरबार में रहता था, मन्त्रियों ने पहिले स्तैफा का कारण पूछा और जब उन्हें ज्ञात हो गया कि लाघव साधु होकर काशी जाना चाहत है वह पत्र स्वीकृति के लिये मुझे सुनाया गया। मेरी छाती पर साँप लोटने लगा। विश्वास तो पहिले ही हो गया था कि यह मेरा सच्चा प्रेमी है। अब और भी अधिक विश्वास हो गया। मैंने आज्ञा दी कि लाघव को महल में भेजो। मैं इससे एकान्त में वार्तालाप करूँगा। उस समय निर्णय करूँगी क्योंकि मैं सरलता से अपने पिताजी के दरबारियों को अलग नहीं कर सकती हूँ!

ऐसा ही हुआ। शाम को लाघव मेरे पास आया। तीन बार झुककर नमस्कार किया।

मैंने पूछा—"अच्छे तो हो?"

लाघव बोला—"सरकार की कृपा है।"

मैं हँसी—"तुम पहिले तो झूठ नहीं बोलते थे। आज तुम को क्या हो गया?"

लाघव बोला—"अब आप रानी हैं। मैं आपका तुच्छ सेवक हूँ। दरबारी सभ्यता के कारण विवशता है।"

मैं बात टाल गई—"क्या तुम काशी जाने और सन्यासी होने का इरादा रखते हो?"

लाघव ने कहा—"सरकार का विचार ठीक है!"

मैंने कहा—"शायद वहाँ जाकर उस देवी की पूजा करोगे जिसका नाम तुमने अब तक नहीं बताया।"

लाघव ने उत्तर दिया—"सरकार का ख्याल सच है।"

मैंने कहा—"क्या उसकी पूजा वहाँ ही हो सकती है?"

लाघव बोला—"सरकार का विचार ठीक है।"

मैंने कहा—"तीन बार मैंने तुमसे प्रश्न किये और तीनों बार तुमने एक गोलमोल उत्तर दिया। क्या इस उत्तर के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते?"

लाघव ने दृष्टि नीची करली—"नहीं।"

मैंने कहा—"यह क्यों?"

लाघव बोला—"सन्यास में नौकरी की अपेक्षा अधिक सुख है। कम से कम चिन्ताओं से छुटकारा मिल जायगा।"

मैंने पूछा—"तुम्हें क्या चिन्ता है? क्या उसके दूर करने का उपाय यहाँ नहीं हो सकता?"

लाघव ने कहा—"सरकार यह न पूछें। मैंने शपथ खाई है कि सरकार से झूठ नहीं बोलूँगा। इस रहस्य को मेरे हृदय के अन्दर ही रहने दीजिये। वह हृदय की श्मशान भूमि में जला करे।"

मैंने कहा—"अफसोस! तुम कैसे आदमी हो। मैं तुम्हारी रानी हूँ। मुझ से जहां तक हो सकेगा तुम्हारी सहायता करूंगी। मैं तुम्हारा त्याग पत्र स्वीकार करना नहीं चाहती।"

लाघव की सूरत में खुशी के आसार प्रगट हुये मगर उसने

फिर अपने आप को एक क्षण में काबू कर लिया। मैं भांप गई कि वह क्या सोच रहा है।

लाघव ने मुंह खोला–" सरकार ! मेरा रोग असाध्य है। यह उस समय तक दूर न हो सकेगा जब तक यह मेरे प्राण न ले लेगा। यह मैं जानता हूँ। मेरी जन्म पत्री के ग्रहों का प्रभाव ऐसा ही कहता है। मैं आप की प्रजा हूँ और नमक ख्वार सेवक हूँ। क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं है कि मैं अपनी अन्तरीय हालत आप से गुप्त रक्खूं ?"

मेरा हृदय द्रवीभूत होगया। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा दया का भाव अधिक होता है।

मैं ने कहा—"तुमको स्वतंत्रता प्राप्त है। मैं तुम्हारा भेद नहीं जानना चाहती। रानी होने पर भी मुझे इसका अधिकार नहीं है। मैंने जो अब तक इतना आग्रह किया है वह केवल तुम्हारी सहानुभूति के ख्याल से किया है।"

इन शब्दों ने रहा सहा उसके हृदय को तोड़ दिया। जिस प्रकार खेत में पाला पड़ने से फसल नष्ट हो जाती है वैसे ही उस का चेहरा पलट गया।"

लाघव ने फिर कहा—" मैं इस शाही सहानुभूति का कृतज्ञ हूँ। सन्यासी अवस्था में रहते हुये जब यह शब्द याद आवेंगे मेरे हृदय को ढारस देंगे और इनका सहारा लेकर जीवन को सहन शील बना लूंगा।"

मैं जादू गरनी थी लेकिन मैंने देखा कि इस युवक की जुबान में मुझ से अधिक जादू की शक्ति विद्यमान है, मन में उसकी और भी कदर हुई।

मैंने कहा—"जाने वाले को किसने रोका है। यदि मेरे शब्दों में यह शक्ति नहीं है कि तुमको कामरूप में रोक सकूं तो फिर मैं और क्या कर सकती हूं। लेकिन जाने से पहले

तुम यह और बतादो कि वह कौनसी देवी है जिसको तुमने इष्ट बना रक्खा है ? और उसका नाम क्या है ? यह तो कोई भेद की बात नहीं है ?''

लाघव कुछ देर चुप रहकर बोला—''गोयम मुशकिल वगरन गोयम मुशकिल। मैं कहूँ भी तो क्या कहूँ। गूंगे ने तेजस्वी देवी का दर्शन किया। आँखों ने देखा अवश्य मगर वह कह नहीं सकती क्योंकि विचारियों को कहने को जुबान नहीं है।''

मैं खिल खिला कर हंसी—''लाघव ! होश की दवा करो। तुम गूंगे तो नहीं हो। भली प्रकार बातें कर रहे हो। कैसे मानूं कि तुम को जुबान नहीं है।''

लाघव निरुत्तर होगया मगर देर के पश्चात बोला—''इस देवी का नाम ज्योतिर्मय है। सरकार समझलें कि यही इस का नाम है। दूसरा नाम मैं क्या बताऊं। अब तो जी यही चाहता है कि सरकार आज्ञा दें और मैं इन पवित्र चरणों को चूम कर काशी चला जाऊं।''

मैं मुस्कराई—''तुम पहेलियाँ न बुझाओ। मैं तुम को उस समय तक काशी कभी न जाने दूंगी जब तक देवी का नाम न सुन लूंगी। मेरी हठ को तुम जानते हो।''

लाघव असमंजस में पड़ गया। उसकी परेशानी मैं जानती थी और जान बूझ कर छेड़ रही थी कि वह खुल जाये और मुझे अपनी जुबान से कुछ कहना न पड़े।

लाघव ने कहा—''पहिले मरना, अन्त में मरना एक ही बात है। मृतक तो मैं अब भी हूँ। एक ख्याल ही है जिस ने मुझे जीवित कर रक्खा है। आप हठ करती हैं। यदि आप की आज्ञा नहीं मानता तो आज्ञा भंग का और अन किये का व्यर्थ अपराधी समझा जाता हूँ। मैं जो कहूंगा, गुस्ताखी होगी। गुस्ताखी के अपराध का दंड अवश्य दिया जाता है। लीजिये

सुनिये। मेरा हाल फारसी भाषा के इस शैर से मिलता है—

मन शमां जां गुदाज़म तू सुबह दिल कुशाई।
सोजम गिरत न बीनम मीरम चूरुख नुमाई॥
नजदीक ईं चीनम दूरम चना न का गुफ्तम।
ने ताव वस्ल दारम ने ताकत जुदाई॥

अर्थ—मैं जांन पिघलाने वाला दीपक हूँ और तू चित्ताकर्षक सुवह है। यदि तुझे न देखूँ तो बराबर जलता रहूँगा और यदि तू अपना मुँह दिखाये तो उसी समय मर जाऊँगा। मैं तुझसे इतना निकट हूं और जैसा मैंने कहा है कि तुझसे दूर भी हूँ। न मुझे मिलाप की शक्ति है न जुदाई की (लाघव ने यही या ऐसा ही शैर पढ़ा होगा)

मैं समझ गई। लाघव ने स्पष्ट कह दिया। मैं फारसी भाषा से जानकार थीं क्योंकि राजा रानी, राजकुमार और राजकुमारियाँ और प्रायः दरबारी मन्त्री आदि विभिन्न देशों की भाषायें सीखते थे। मैं मन में हँसी और उसकी संयम शक्ति से प्रभावित हुई। मगर फिर भी मुझे अनजान बनकर छेड़छाड़ करना स्वीकार था।'

मैं ने कहा—"शैर तो विचित्र है मगर मैं इससे क्या समझूँ। क्या तुम पिघलाने वाले दीपक हो? क्या तुम्हारी देवी चित्ताकर्षक सुवह है, जिसके मिलाप और वियोग की तुमको शक्ति नहीं है?"

लाघव ने उत्तर दिया-"मेरी वैसी ही दशा है।"

मैं बोली—"क्या वह देवी ईश्वर से भी अधिक ज्योतिर्मय है?"

लाघव ने कहा—'मेरी वही ईश्वर है। मैं और किसी ईश्वर का विश्वासी नहीं हूँ।'

मैं हँसी—"ईश्वर तो सर्व व्यापक है। क्या वह देवी भी

सर्व व्यापक है ?"

लाघव ने ठहरकर उत्तर दिया—'वह व्यापक होगी। मैंने केवल उसका सीमित भौतिक रूप का वर्णन किया है।"

मैं खिल खिला मार कर हंसी—'तब तो तुम्हारा शैर ग़लत निकला। जब उसका दर्शन होगया तो तुम कैसे जीवित रहे। शैर का विषय ऐसा ही है।"

लाघव हाजिर जबाब प्रसिद्ध था। "जिस तरह बिजली का कौंधा वर्षा ऋतु में चमक कर गुप्त हो जाता है और फिर काले बादलों से आकाश काला होजाता है वैसे ही मैंने क्षण मात्र में उसका दर्शन किया। आंखों में धुंधला पन आगया। फिर न मैंने उस की ओर दृष्टि की और न मृत्यु ने मेरा गला दबोचा। यह मेरे अब तक जीवित रहने का कारण है, अन्यथा मेरा जीवन रूपी दीपक कब का बुझ गया होता।"

मैं इस उत्तर से बड़ी प्रसन्न हुई। यह आदमी कम से कम बड़ा समझदार है। बात भी कहता है और संयम शक्ति से उसे स्पष्ट भी नहीं होने देता। क्या आश्चर्य कि किसी समय यह बड़ी युक्ति वाला होजाय।

मैं बोली—"लाघव! जब वह देवी ऐसी भयानक है तो तुम को उस की लालसा करना व्यर्थ है।"

लाघव ने तुरन्त उत्तर दिया—"पतंगे से पूछो कि वह क्यों शमा (दीपक) पर जलता है। जलना तो उसके भाग्य में लिखा है। वह बेचारा करेतो क्या करे। वह न शमा पर गिरने से रुक सकता है न अपने प्राण बचा सकता है।"

मैं बोली—"अब तक तुम ने उस देवी का ठीक नाम नहीं बताया। अच्छा मैं इसे छोड़े देती हूँ। अब इतना बताओ कि क्या वह काशी ही में है यहां नहीं है ?"

लाघव से इस बात का उत्तर नहीं बन आया। वह मेरे

पाँव पर गिर पड़ा और नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। मेरे हृदय पर दया ने अधिकार जमा लिया।"

मैंने कहा—"लाघव! तुम बुद्धि मान हो। कौन वस्तु ऐसी है जो मनुष्य को पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं होती।"

लाघव ने उत्तर दिया—"चकोर लाख चन्द्रमा को देखा करे कंमल हजार सूर्य्य के प्रकाश से अपने नेत्रों को आनन्दित करे, मगर इनके बीच में करोड़ों योजन की दूरी है। इनका मिलना असम्भव है।"

मैंने कहा—"फिर बुद्धि तो राय देती है कि इस विचार को त्याग दो।"

लाघव ने उत्तर दिया—"मैं पहिले कह चुका हूं कि पतंगा बेबस है। यह ऐसी बात है कि इस में बुद्धि और होश पहिले ही खोजते हैं। आप यदि काशी जाने की आज्ञा नहीं देतीं तो मैं आज्ञा भंग का साहस नहीं कर सकता। वहाँ न जाऊंगा लेकिन अब अधिक समय तक मेरा जीना कठिन है।"

मैं मन में डरी कि कहीं यह निराश होकर आत्म हत्या न कर बैठे।

मैंने कहा—"देखो मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ है। मेरे हृदय में तुमने स्थान पालिया है। मुझे हर तरह पर सान्त्वना स्वीकार है। यदि इन शब्दों को भी तुम नहीं समझ सकते तो फिर मैं क्या करूं। धैर्य से काम लो। मैं कोई न कोई ऐसा उपाय सोचूंगी कि तुम्हारी देवी तुम को मिल जाय और तुम उस की संगत से खुश रहो। आज नहीं बहुत दिनों से यह ख्याल है मगर अवसर दूसरा है। बिना सोचे समझे कोई काम नहीं करना चाहिये अन्यथा परिणाम अपमान जनक होता है। अब तुम जाओ। बहुत देर होगई। कभी कभी मेरे पास आजाया करो। मैं स्वयं तुम्हारे रोग का इलाज हूँ।"

लाघव की जान में जान आई। मेरे पैरों पर गिरा। खुशी के आँसू बहाये। वह मेरा अभिप्राय समझ गया और नमस्कार करके अपने घर गया।

चतुर्थ प्रकरण

लाघव गुम

यह संसार विचित्र है, बदले छिन छिन आन।
लहलहाय पीला पड़े, ज्यों तमोली पान॥

"दुनियां में सब कुछ मिलता है मगर वफादार साथी का हाथ आना बहुत कठिन है। मैंने लाघव की वार्तालाप से यह परिणाम निकाला कि यह हर तरह के काम का आदमी है। उसका सम्बन्ध विशेष प्रकार का लाभप्रद सिद्ध होगा। किसी बराबर वाले राज कुमार से विवाह करने का विचार तो मेरी बुद्धि में भी नहीं आया। लाघव को मैंने प्रकृति की वाटिका का अत्यन्त मनोहर और सुन्दर पुष्प समझा, जिस में सुगन्ध के साथ साथ चटकीलापन भी था। प्रसन्न चित्त, मीठी बोली अच्छा स्वभाव, ऐसा पुरुष किसी स्त्री के भाग्य में कब आता है!"

दूसरे दिन दरबार में उस को नहीं देखा। खोजने वाली आंखों ने चारों ओर उस की खोज की मगर वह दिखाई नहीं नहीं दिया। मैं बड़ी व्याकुल हुई। जी चाहता था कि उसी समय पूछूं कि वह क्या हो गया मगर चूंकि महारानी हो गई थी इसमें अपने बड़प्पन में बट्टा समझा। देखिये देश के शासक और साधारण आदमी में यह अंतर होता है। फिर भी मुझसे न रहा गया। राज का काम करने के बाद मैं ने मुख्य मन्त्री को सायंकाल को महल में आने की आज्ञा दी।

वह बूढ़ा खुर्राट बड़ा अनुभवी था। जब मैं दरबार में इधर उधर देखती थी उसकी दृष्टि मेरे ही ऊपर थी। उसका नाम विश्वामित्र था।

सायंकाल हुआ। संध्या बन्दन के पश्चात् दीवान जी महल में आये। मुझे नमस्कार किया। दूसरे लोगों को वहां से चले जाने की आज्ञा दी।

मैंने पूछा—"कल लाघव का त्याग पत्र आया था। आज मैंने उसे नहीं देखा। क्या तुम बता सकते हो वह कहां है?"

विश्वामित्र ने कान पर हाथ रक्खा—"मुझे इसका तनिक भी पता नहीं है।"

मैं ने कहा—"तुम राज के मन्त्री हो। तुमको हर बात की सूचना होनी चाहिये।"

विश्वामित्र बोला—"मैं ने दरबार से अनुपस्थित पाकर उसके घर आदमी भेजे। तब पता लगा कि वह रात ही से लोप है। रात को वह घर सोने भी नहीं गया था।"

मैं ने पूछा—'फिर तुमने उसकी खोज में और आदमी भेजे या नहीं?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"नहीं।"

मैं ने कहा—"क्यों?"

विश्वामित्र बोला—"कारण यह है कि वह सन्यासी बन कर काशी की ओर जाने वाला था। वह ब्रह्मचारी और स्वतंत्र है 'जोरू न जाता चले द्वारिका'। यदि वह किसी बिना सूचना दिये गुम हो गया तो इसका अर्थ यही समझ में आता है कि वह साधू हो गया। मैं आज दस बारह दिन से बराबर देखता था कि वह उदास रहता था। चेहरे का रंग पीला। किसी से बातचीत तक नहीं करता था। यदि उसने संकल्प पूरा कर लिया हो तो इस में आश्चर्य ही क्या है!"

मैंने पूछा—"वह उदास क्यों था? कोई न कोई कारण तो होना चाहिये।"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"उसने किसी को भी अपना सहभेदी नहीं बनाया और प्रश्न करने पर भी किसी को उत्तर नहीं दिया।"

मैंने कहा—"यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पिताजी का एक मशीर इस तरह दरबार को छोड़ गया। मुझे बड़ा अफ-सोस है।"

विश्वामित्र हंसा—"महारानी साहिबा! राजाओं को ऐसी छोटी छोटी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। शाशन अधिकारियों का हृदय समुद्र के समान है जिस में मोती मूंगे रत्न, जवाहरात अनगिनत होते हैं। यदि किसी डुबकी लगाने वाले ने दो चार दस बीस मोती निकाल लिये अथवा वह किसी तरह उस में से निकल गये तो समुद्र को क्या परवाह है। यदि वह चला गया तो जाने दीजिये। इस के स्थान पर दो चार दिन बाद दूसरा व्यक्ति नियत कर दिया जायेगा।"

मैंने विश्वामित्र की ओर दृष्टि की—"राजा का यह भी धर्म है कि अपनी प्रजा और अपने दरबारियों का ध्यान रक्खे।"

विश्वामित्र बोला—"यह ठीक है लेकिन इसको बहुत महत्व देने की आवश्यक्ता क्या है?"

मैंने कहा—"राज का काम योग जैसा है। जिस प्रकार योगी अपने उच्च और नीच भावों का ध्यान रखता हुआ उन को वश में रखता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि सब के व्यवहार को जानता हो। उनको वशमें कर रक्खे ताकि वह कहीं बिना सूचना के जाने न पायें। और न ऐसा काम कर बैठें जो

राज्य के लिये हानि प्रद हो। सम्भव है किसी कारण से लाघव अप्रसन्न होकर चला गया हो और यदि दूसरे राजा से मिलजाय, उस समय उसका यह व्यवहार दुख दाई होगा या नहीं ?"

विश्वामित्र को इन वाक्यों के सुनने से आश्चर्य हुआ। वह मुझे अज्ञानी, तुच्छ बुद्धि, ना तजुर्बेकार लड़की समझता था। उस की जानकारी में मैं मोम की नाक थी कि जिधर चाहा पकड़ कर फेर दिया। उसे यह ज्ञात नहीं था कि ईश्वर ने मुझे विशेष प्रकार का दिल और दिमाग दिया है। वह सब स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखा करता था।

विश्वामित्र बोला—"फिर आपकी क्या आज्ञा है ?"

मैंने कहा–" तुम जाओ। अपने गुप्तचर भेजो और जैसे हो सके पता लगा कर उसे वापिस बुलाओ। यदि उसे किसी से शिकायत है तो मैं सुनकर कूटनीति से सन्तुष्ट कर दूँगी। तुम को याद रखना चाहिये कि मैं सरलता से एक आदमी को भी अपने राज से अलग नहीं करना चाहती। मैंने कल ही राज की बाग डोर अपने हाथ में ली है और आज ही एक मशीर बिना आज्ञा के गुम होगया। क्या यह बदशगुनी नहीं है ?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया--"बहुत अच्छा ! आप निश्चिन्त रहें। मैं दूसरे मंत्रियों से मंत्रणा करके आपकी आज्ञा का पालन अक्षरसः करूंगा लेकिन मुझे आशा नहीं है कि लाघव वापिस आये। उस के सिर पर वैराग्य का भूत सवार हो चुका था।

मैं उस के चले जाने में कोई भय नहीं देखता। वह निर्दोष व्यक्ति था और और उसे किसी से शिकायत भी नहीं थी। यह मैं जानता हूं।"

मैं बोली–" जो हो मगर उसका आना अनवार्य्य है। तुम

जानते हो कि मैं बचपन से हठीली हूँ। यदि वह वापिस न आयेगा तो इसका परिणाम बुरा होगा।"

दीवान के कान खड़े हुये। उसने नम्रता से प्रणाम किया और बिदा होकर चला गया।

पाचवां प्रकरण

लोप हुये का समाचार

सुधि पाई उस पीव की, तड़प रहा मन मोर।
काल कर्म बरयार है, चला न नर का जोर॥

पाँच दिन बीते दस दिन बीते बीस दिन बीते मगर लाघव का कुछ पता न चला। मेरी व्याकुलता और बेचैनी को कौन जान सकता था। मैंने अपने ढंग पर भी कोशिशें की मगर किसी ने भी यह नहीं बताया कि वह क्या हुआ और किधर चला गया। ओह! इस प्रकार एक आदमी का खोजाना क्या मेरा दुर्भाग्य नहीं था!

इस घटना के बीसवी रात्रि को मुझे लोना का ध्यान आया। मैं उस के ध्यान में सोगई। स्वप्न में देखा कि वह सिरहाने खड़ी है। मैं उठी। चरणों में गिरी।

लोना ने हंस कर कहा-"विद्वान शिष्य! तूने मुझे व्यर्थ स्मरण किया। क्या मैंने कुछ आवश्यक विद्या से तुझे जानकार नहीं कर दिया? कल तू किसी छोटी लड़की को बुला कर हाजरात(१) (आत्माओं के बुलाने)का साधनकर और जो कुछ तुझे पूछना हो सीधे सीधे रूहों से पूछ। तुझे पता मिल जायेगा।"

आंख खुल गई। न कहीं लोना है न उसकी बातें हैं। जी में लज्जित हुई। असली उपाय तो मेरे पास था मगर मैं राज्य के झंझटों में उसे भूल गई थी।

(१) इस प्रकार के ध्यान को अंग्रेजी में टैली पेथी कहते हैं।

अच्छा कल इस की भी परीक्षा करूँगी।

प्रातः काल हुआ। पूजा पाठ और आवश्यक कार्यों से निवृत होकर मैंने एक सुन्दर और निर्दोष क्वारी कन्या को बुलाया। जो मामूल हो सकती थी। उसे एकान्त में पास बिठाकर मैंने जादू का डंडा (१) उस के सिर पर फेरा।

वह अचेत होगई। तब मैंने यह मंत्र पढ़ा:-

ताल बाँधू पताल बाँधू, बांधू शैल की चोटी।
ब्रह्मरेन्द्र के शिखर को बाँधू, दे दे रस्सी मोटी॥
आ बैताल विक्रम का साथी, बात बता दे सारी।
कपट छल से काम न लैना, लोना की बलिहरी॥
फिरो मंत्र ईश्वरो वाचा। जो बोलूं सो होजाय साँचा॥
(दुहाई गुरु गोरख नाथ की)

मैंने कहा-"क्या बैताल आगया?"

कन्या ने उत्तर दिया-"हाँ, वह हाजिर है। जो कुछ पूछना हो शीघ्र पूछिये वर्ना वह चला जायगा। इसे और जगह भी जाना है।"

मैंने कहा-"लाघव कहाँ चला गया?"

कन्या बोली-"वह स्वयं अभी हाजिर किया जाता है?"

नोट (१) मैस्मेरजिम वाले जो साधन हाथों के चक्र देने से करते हैं वह पहिले जादू के डंडे से किया जाता था। उस में साधन से मानसिक बिजली भरली जाती है और केवल सिर पर एक बार फेर देने से मामूल अचेत होजाता था।

(२) इस साधन को अंग्रेजी में स्पिरिचुअलिजम कहते हैं। इस में मुर्दों की रूहों को बुला करके हाल पूछा जाता है।

कन्या ने दो क्षण के बाद कहा–"लाघव की रूह हाजिर है।"

मैंने प्रश्न किया–"लाघव तुम कहां चले गये? और क्यों चले गये? क्या मेरी बातों से तुम्हें संतुष्टि नहीं हुई थी।"

लाघव ने उसी कन्या की जबान से उत्तर दिया–'मैं वहां चला गया जहाँ से फिर कोई वापिस नहीं आता। आपने मुझे आशा दिलाई थी। देवी के मिलने का मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था मगर मैं द्वेष और मत्स का शिकार हुआ। निर्दोष मारा गया।'

मैंने पूछा–"क्या तुम मर गये और अब दुनियाँ में नहीं हो?'

लाघव बोला–"आपका विचार ठीक है।" वही बोली, वही शब्द, वही लहजा! मैं सुनकर दंग रह गई। यह मेरा पहिला अनुभव था।

मैंने प्रश्न किया–'तुम्हारा हत्यारा कौन है? और तुम क्यों कत्ल किये गये?'

लाघव ने उत्तर दिया–'मेरे हत्यारे तुम्हारे दीवान विश्वामित्र और सेनाध्यक्ष करन हैं। उन्होंने महल में अपने गुप्तचर लगा रक्खे थे जो क्षणक्षण में आपके समाचार उन्हें देते रहते थे। जो बातें मुझमें और आप में हुई वह अक्षरसः उनको सुना दी गई। दोनों ने मिलकर मशवरा किया। इनको भय था कि यदि मैं अपनी देवी का उपासक बन गया तो इनकी पहुंच चकनाचूर हो जायगी। और यह सम्बन्ध राज्य की बदनामी का कारण होगा। विश्वामित्र स्वयं मेरे घर बुलाने आया। मैं निडर था। क्या खबर थी कि वह मेरे रक्त का प्यासा है। उस के घर में करन विद्यमान था। दोनों ने मुझे पूछा कि महेश-

मति से आज क्या बातें हुई थीं। मैंने असली हाल उनको सुनाया। यह और भी उनके भय का कारण बना। वह डरे कि कहीं मैं आपके चित्त को उनकी ओर से घृणित न कर दूं। बुरा भला कहने के बाद करन ने खंजर से मेरा सिर काट लिया। मुझे इतना भी अवसर नहीं मिला कि मैं भी अपनी तलवार खींचता"

'मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।"

मैंने फिर प्रश्न किया—"तुम्हारी लाश क्या हुई?"

लाघव ने उत्तर दिया—"वह दीवान के महल के चौक में रात ही के समय गाढ़ दी गई। वह चौक के बीचाबीच में है। यदि किसी प्रकार निकाल कर जला दी जाती तो मुझे चैन मिलता क्योंकि मैं सूक्ष्म शरीर की सहायता से अबतक उसके चारों ओर चक्कर लगाया करता हूं। जिन लोगों का मृतक संस्कार नहीं होता वह प्रेत योनि में रहते हैं। आप यदि इस काम को कर सकें तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी वर्ना कौन जाने मेरा शरीर कब सड़ गल कर नष्ट होगा और मुझे इस योनि से मुक्ति मिलेगी।"

मैंने कहा—"विश्वास रक्खो मैं ऐसा ही करूंगी लेकिन दो चार बातों का उत्तर दो। पहिली यह कि अब तुमको मेरा ख्याल है या नहीं? दूसरी यह कि मृत्यु के पश्चात तुम्हें कुछ दुःख हुआ या नहीं? तीसरी यह कि अब तुम्हारी क्या दशा है?"

लाघव ने उत्तर दिया—"आदमी संसार में रह कर जिस विचार को पक्का कर लेता है मृत्यु के उपरान्त भी उससे संबंध रखता है। मैं आपको भूल कैसे सकता हूँ। आप मुझसे तत्व रूप में बराबर मिला करती हैं यह पहिले प्रश्न का उत्तर है। मरने में मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। लोग व्यर्थ मृत्यु के नाम

से डरते हैं। यह केवल आनन्द दायक परिवर्तन की दशा है। तलवार जब खट से मेरी गर्दन पर लगी उस समय थोड़ा नाम मात्र को कष्ट हुआ मगर वह दुख नहीं कहा जा सकना। फिर मैं प्रकाश मय जगत में आगया। यह दूसरे प्रश्न का उत्तर है। इस दशा में मैं खुश हूँ। दुनियाँ में मुझे जिसकी चाह थी वह देवी मेरे साथ रहती है। यह तीसरी बात का उत्तर है। केवल इतनी इच्छा है कि शरीर जला दिया जाय ताकि इस बन्धन से भी छुटकारा प्राप्त हो।"

मैंने कहा—"इसका प्रबन्ध शीघ्र करूँगी। अब यह बताओ कि महल में कौन व्यक्ति है जो गुप्त चर का काम करता है?"

लाघव ने कहा—"आपकी बाँदी अन्ना और विमला दोनों दीवान से वेतन पाती हैं। जब मैं आपसे बातचीत कर रहा था, यह उसी कमरे में पर्दों के पीछे छिपी बैठी थीं। उसके फर्श में सुरंग है जिसमें से यह आया जाया करती हैं। यह महल चूंकि दीवान के ही प्रबन्ध से बना था, लगभग इसके सब कमरों में ऐसी सुरंगें हैं। इसकी जानकारी गिने चुने थोड़े से लोगों को है।"

मैंने कहा—"मुझे तुम्हारा वियोग दुखदाई हो रहा है। मैं इन धूर्तों से बुरी तरह बदला लूंगी। क्या आश्चर्य मैं इनकी गर्दन उतारने का हुक्म दूं।"

लाघव बोला—"ईश्वर के लिये ऐसा न करना अन्यथा मुझे शोक होगा। मैंने उनको क्षमा कर दिया। आप भी क्षमा कर दीजिये। कौन जाने मुझे आपकी निकटता कब प्राप्त होगी। यहां हर समय जब जी चाहता है आप से मिलता जुलता रहता हूं। इसके अतिरिक्त वह आपसे अधिक पहुंच वाला है। इससे बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। वह कहीं आपकी जान के पीछे न पड़ जाय। दरबारी निष्ठुर और स्वार्थी होते हैं।"

मैं अचम्भित हुई—"मैं तो अभी तक दुनियां ही में हूँ। तुम किस प्रकार मुझसे मिलते हो? मुझे तो इसका विचार तक नहीं होता।"

लाघव उसी कन्या के रूप में हँसा—"मैंने प्रश्न का उत्तर तुमको देदिया लेकिन आप नहीं समझ सकती हो। यह रहस्य है जो मरने के उपरान्त ज्ञात होता है। मै यहां उसी तरह आपकी कल्पित मूर्ति बनाकर उसका ध्यान करता हूँ। मुझे अब जाने दीजिये। देर होरही है। दुनियाँ में आना मेरे लिये पाप है।

मैं बोली—"बेवफा लाघव! तुमको क्या अब मेरी संगत पसन्द नहीं है?"

लाघव हंसा--"रहता तो मैं आप ही की संगत में हूं मगर आपका स्थूल शरीर भौतिक है। मेरा सूक्ष्म है। एक जातिपना नहीं रहा। आपके सूक्ष्म शरीर को बनाकर संगत का आनन्द उटाया करता हूँ। राम राम! लो अब जाता हूँ। फिर कभी बुलाने पर आ सकूँगा मगर केवल थोड़ी देर के लिये।'

कन्या ने आंख खोल दी। उसकी बेहोशी जाती रही। जो मैं जानना चाहती थी वह ज्ञात हो गया।"

छटवां प्रकरण

क्षमा और दंड

क्षमा दया में सत बसे, क्षमा ईश का रूप।
क्षमा दया जिस में बसे, पड़े न भव जल कूप॥

मैं दरबार में गई। मन को काबू में रक्खा। शाम को महल में आई। रात भर सोचती रही। अन्त में यह संकल्प किया कि पहिले दरबारियों को कूट नीत से एक दूसरे की ओर से

विरुद्ध करूँ ताकि उनमें कोई किसी का विश्वास न करे शासन का नियम साम, दाम, दंड और भेद है। किसी को धमकाया, किसी को लालच दी, किसी में फूट डाल दी और किसी को कड़ा दंड दिया। यह साम दाम, दंड और भेद का अभिप्राय है।

"यह बात मेरे लिये क्या कठिन थी! मैं रूपवती स्त्री थी। रूप स्वयं जादू है और फिर उस पर जादू की विद्या की जानकारी सोने पर सुहागे काम देने को मौजूद। कुछ ही दिनों में मैंने करन और विश्वामित्र को एक दूसरे का विरोधी बना दिया।"

जब यह दशा हो गई, एक दिन रात्रि के समय मैंने मुख्य मन्त्री और सेना मन्त्री को बुला भेजा। वह आये और एकान्त में मुझसे मिले।

मैंने पहिले विश्वामित्र से पूछा—"लाघव का पता मिला?"

विश्वामित्र बोला—"नहीं।"

मैंने पूछा—"क्यों नहीं?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"पिंजड़े से उड़ा हुआ पंछी कब वापिस आता है। कौन जाने वह किस जंगल में होगा। कहावत है—फकीरों से कब कोई करता है प्रीति। और कहा गया है कि जोगी हुये किस के मीत? लाघव सन्यासी होकर चला गया। हां, इतना मैंने पूछगछ कर लिया है कि वह किसी राजा के दरबार में नहीं गया।"

मैंने करन से पूछा—"क्या तुम्हें कुछ इसकी जानकारी है?"

मैंने दोनों से कहा—देखो! पिताजी के सामने दोनों ने शपथ उठाई थी कि मेरे साथ सचाई का व्यवहार करोगे मगर तुम मुझे धोखा दे रहे हो। यह भारी नमक हरामी है। गद्दारी है और बेवफाई है।"

यह कठोर बचन सुनकर दोनों तिलमिला उठे।

विश्वामित्र बोला—"महारानी! आपके पिताजी ने कभी ऐसे घृणित और अपशब्द कह कर जिभ्या को शोभित नहीं किया था।"

करन ने कहा—"सरकार को ध्यान रखना चाहिये कि मैं सेना का मंत्री हूं।"

मैंने आंखें बनाईं। "धूर्तो! मैं तुम को अच्छी तरह जान गई हूँ। तुम दोनों ही झूठे हो और विश्वास के योग्य नहीं हो। खबर नहीं पिताजी ने क्यों ऐसी जिम्मेदारी का काम तुम जैसे मक्कार आदमियों के सुपुर्द किया था।"

क्रोध रूपी हवन में घी की आहुत दी गई। दोनों उठ खड़े हुये।

दोनों ही ने कहा—"यह अपमान असह्य है। आप लाख रानी हों मगर हम लोग भी आखिर कोई हैं और राज्य की इमारत के स्तंभ कहलाते हैं।"

मैं मुस्कराई। क्रोध को दबा कर रक्खा। "अज्ञानियो! तुम अपन आपको समझते क्या हो! मैं लाख रानी नहीं करोड़ों रानियों की शक्ति रखती हूं। तुम्हारे जान व माल दोनों मेरे हाथ में हैं। तुम को यह साहस कैसे होता है कि लाख रानी कहकर मेरा अपमान करते हो। मैं अभी क्षण मात्र में तुम को जल्लाद के सुपुर्द कर सकती हूं। आज मैं तुम से स्पष्ट रूप से सुनूंगी कि लाघव क्या हुआ? मेरी हठ तुम जानते हो।"

दोनों ने चाहा कि महल के बाहर निकल जांय मगर मैंने जादू से उनके हाथ पांव बाँध दिये। केवल एक दृष्टि से देखने की आवश्यक्ता थी और वह बेवस होगये। पैर हिलने से मना करने लगे। हाथों की शक्ति जाती रही। केवल जिभ्या की स्वतंत्रता थी।

दोनों बोलीं—"कल की लड़की। और हमें ऐसी गाली सुनाये। हम ऐसे अप-शब्द सुनना नहीं चाहते।"

मैं हंसी!" इब्तदाये इश्क है रोते हो क्या। आगे आगे देखना होता है क्या अभी तो मैंने अपमान जनक शब्दों से ही जवान को गंदा किया है। यदि तुमने स्वीकार नहीं किया तो मै बुरी तरह से पेश आऊंगी। महारानी महेश मती राजा शल मान नहीं है। स्त्री को सब शमशेर बिरहना कहते हैं। मुझे दुधारी कटार समझो।"

दोनों ने पूछा—"आप क्या स्वीकार कराना चाहती हैं?"

मैंने कहा—"लाघव क्या हुआ?"

विश्वामित्र बोला—"वह परदेश चला गया।"

मैंने कहा—"यह सिर से पांव तक झूँठ है। तुमको विश्वामित्र का नाम किसी मूर्ख अज्ञानी ने दिया था। तुम विश्व शत्रु हो। या तो सच बात कहो या मैं और तरह का व्यवहार करूंगी।"

करन बोला—"सच्ची बात तो यह है कि वह काशी को चला गया।

मैंने कहा—"क्या मैं अन्ना और विमला को बुला कर तुम्हारे सामने अभी सब भेद खोल दूँ।"

अब तो इनके कान खड़े हुये। होश के तोते उड़े। मन ही मन में सोचने लगे कि दोनों बांदियों ने भेद का भाँड़ा फोड़ दिया मगर उनको केवल इतना ही ख्याल हो सकता था कि गुप्त चरों ने साधारण बातें कहीं होंगी संभल गये।

विश्वामित्र ने कहा—"उनके बुलाने की आवश्यकता नहीं है। यदि उन्होंने कोई बात कह दी तो उसका सम्बन्ध राजनीति से है। हम राज के काम काज के जिम्मेदार हैं। यदि राजा रानी के समाचारों से हर समय जानकारी पैदा करते

रहते हैं तो इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है। हर देश में ऐसा ही होता है।"

मैं हँसी—"क्या यदि महल में मन्त्री के गुप्तचर रहते हैं तो राजा के गुप्तचर मन्त्रियों के मकान में नहीं रह सकते? वह भी तो राजनीति है।"

इन शब्दों के सुनते ही उनके रहे सहे होश खो गये। विश्वामित्र जान गया कि मैं अज्ञान और नातजुर्बेकार नहीं हूं। आवश्यकतानुसार राजकाज का ज्ञान रखती हूँ। मगर वह ठंडे और गर्म का अनुभव रखता था। वर्षों से कूटनीति से काम लेने का आदी था। मन को काबू कर लिया।

विश्वामित्र बोला—"राजनीति ही हमारे समर्थन का हथियार है।"

मैंने कहा—"इन संदिग्ध बातों से काम न चलेगा। आज सच कहलाकर चैन लूँगी।"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"जो सच था वह कह दिया गया। लाघव को भगा दिया गया ताकि राज वंश के पल्ले में अपयश का धब्बा न लगने पावे। यह काम बिल्कुल नेकनीयती से किया गया था। वह अब न यहां है और न उसका पता है।

मैंने कहा—"उसे किधर भगा दिया? करन! अवसर है। तुम स्पष्ट कहदो। तुम दोनों शरीक हो।"

करन फौजी आदमी है। फौजी कर्मचारी दूसरे कर्मचारियों की अपेक्षा सच्चे होते हैं। वह पहिले चुप रहा फिर बात को टालना चाहा। मैं उसके उत्तर की प्रतीक्षा में थी।

करन बोला—"महारानी! जो होगया वह होगया। अब इसे जाने दीजिये। हम दोनों ही आपके शुभ चिन्तक हैं।"

मैंने कहा—"यह प्रमाण नहीं। साफ साफ कहो, यद्यपि मैं

सब जानती हूँ।"

विश्वामित्र ने पूछा—"आप क्या जानती हैं ?"

मैंने कहा—"मैं यह जानती हूँ कि तुम दोनों बेईमान, गद्दार और हत्यारे हो। तुम अर्धरात्रि को उस निर्दोष को बुला कर घर ले गये। करन ने उसे कत्ल कर दिया। लाश तुम्हारे घर के चौक में गड़ी है। कहो सच है या झूठ ?"

काटो तो बदन में लहू नहीं। दोनों के चेहरे का रंग उड़ गया।

मैंने कहा—"हत्या बिना बदले के रह नहीं सकती। वह तुम दोनों के सिर पर सवार है। यदि अभी स्वीकार नहीं करते तो बहुत बदनाम हो जाओगे। मान धूलमें मिल जायगा और कल के दिन तुम दोनों को फांसी दिलाऊँगी।"

दोनों ने निरोत्तर होकर स्वीकार किया। "आप सच कह रही हो। यह अपराध हमसे हुआ। मगर चूंकि राज के हित का ख्याल था हम दोनों निर्दोष हैं।"

मैंने कहा—"जल्लादो ! तुमने बुरा किया। बुलाऊँ अभी सिपाही कि वह उल्टी मुश्कें चढ़ावें और हाथ पांव में बेड़ियां डाल दें।"

यह सुन कर वह भागना चाहते थे मगर भाग कैसे सकते थे।

दोनों बोले—"क्या किसी प्रकार यह अपराध क्षमा नहीं हो सकता ?"

मुझे लाघव की शिक्षा याद आगई।

मैंने कहा—"तुमने अब अपराध स्वीकार कर लिया है। चूँकि पुराने कर्मचारी हो, अपने ढंग पर शुभचिन्तक भी हो मैं तुम्हारी गर्दन न मारूँगी और न भेद को खोलकर तुम्हें

अपमानित करूँगी। तुम बिल्कुल मेरे अधिकार में हो। न भाग सकते हो न विद्रोह कर सकते हो यहाँ तक कि तुम हजार प्रयत्न करो, मेरी आज्ञा बिना इस जगह से हिल तक नहीं सकते यह तुम समझ गये होगे। अब भलाई इसमें है कि आज लाश को खोद कर उसी मकान में जला दो। किसी को कानों कान खबर न होने पावे।"

दोनों ने कहा—"हम क्षमा के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।"

फिर मैंने अपने जादू के प्रभाव को खेंच लिया। शस्त्र-धारी सिपाहियों के साथ मन्त्री के घर गई। लाश निकलवाई, चिता बनवाई और अपने हाथ से उसको अग्नि देकर महल को चली आई और आज्ञा दे आई कि दूसरे दिन विश्वामित्र और करन दोनों नियम पूर्वक आज्ञा लेकर काशी जायें। गंगा जी में उसके फूल डाल आयें। उनकी अनउपस्थिति में सेना मन्त्री और मुख्य मन्त्री का काम मैं स्वयं करूँगी।

द्वितीय भाग समाप्त

तीसरा भाग

पहिला प्रकरण

त्रिया राज की स्कीम (योजना)

नारी नर की खान है, नारी अति बलवान।
नारी के परताप से, उपजा जगत महान॥

दूसरे दिन से मैं स्वयं अपने राज्य के मन्त्री और सेनापति का काम करने लगी। चार बजे प्रातः उठती। स्नान ध्यान करने के पश्चात सेना को व्यायाम कराती। आठ बजे वहाँ से आकर भोजन करके दरबार में बैठती। मुकद्दमों तथा मामलों की सुनवाई करती और पाँच बजे सायंकाल को महल में आती। यह नित्य नियम हो गया था। जहाँ तक सम्भव था मैं सदा न्याय को दृष्टि में रखती थी। राज्य का कोई ऐसा विभाग नहीं था जिसमें मैं हस्तक्षेप नहीं किया करती थी। दरबारी और दरबार के कर्मचारी मेरी योग्यता देखकर अचंभे में थे। प्रजा में मैं सर्वप्रिय होगई। राज्य में बहुत सी पाठशालायें स्थापित कीं। कला कौशल कामों को चालू किया मगर लाघव की मृत्यु ने मुझे बिल्कुल बदल दिया। पुरुषों के नाम से चिढ़ने लगी। दिल में यह विचार पैदा हुआ कि राज्य के प्रत्येक विभाग का काम स्त्रियों के सुपुद करूं किन्तु यह एक ऐसा विषय था जिसमें शीघ्रता करना अपने पांव में कुल्हाड़ी मारनी थी। हां, यदि लोना पास होती तो मैं उससे राय लेती मगर वह तो पंजाब के शहर स्यालकोट में थी। फिर भी मैं धीरे धीरे बुद्धिमान और विद्वान स्त्रियों को इकट्ठा करने लगी। जिसके बारे में सुना कि वह समझदार है उसे

बुलाया अपनी सहेली बनाया।

इस प्रकार कुछ दिनों के पश्चात् ही बुद्धिमान और समझदार स्त्रियों का दल मेरे पास हो गया।

इनमें दो स्त्रियां विशेष रूप से अत्यन्त बुद्धिमान थी। कमला और नन्दी। पढ़ी लिखी, शास्त्रों की ज्ञाता! इनको मैंने अपना सहभेदी बनाना चाहा।

मैंने एक दिन कहा—'तुम क्या समझती हो! पुरुष स्त्री से बढ़कर है या स्त्री पुरुष से?"

कमला बोली—"पुरुष पुरुष है। स्त्री स्त्री है। एक असल है, दूसरा छाया है। स्त्री पुरुष से हर तरह से बढ़कर है।"

मगर नन्दी का विचार इसके बिल्कुल प्रतिकूल था। वह स्त्री का बड़प्पन पुरुष पर स्वीकार नहीं करती थी।"

कमला ने कहा—"मेरी समझ में बड़प्पन तो स्त्री ही को प्राप्त है।"

मैं मन में बड़ी प्रसन्न हुई कि कम से कम यह मेरे जैसे विचार वाली तो है।"

मैंने पूछा—"किस तरह?"

कमला बोली—"हर तरह पर। रूप रंग, शील स्वभाव, धर्म बुद्धि, विवेक, व्यवहार, भाव, विचार, साहस, तात्पर्य्य कि हर तरह से स्त्री पुरुष से से बढ़ी चढ़ी है।"

मैं प्रसन्न हुई। "इसकी तनिक व्याख्या करो।"

कमला ने कहा—"पहिले धार्मिक दृष्टि कोण से देखो। ऋग वेद बहुत पवित्र ग्रन्थ है। वह अपने उपासना मंत्र में देवी की उपासना करता है—"ओ३म शन्नो देवी ·····।"

ऋग वेद में देवी सक्त की प्रधानता मानी गई है। सरस्वती ज्ञान की, लक्ष्मी धन की, पारवती शक्ति की देवता प्रसिद्धि हैं। इस से सिद्ध हुआ कि बुद्धि धन और शक्ति की दृष्टि से स्त्री ही

बढ़ कर है। ईश्वर की परिभाषा सर्वशक्तिमान है। फिर यह शक्ति क्या है। शक्ति स्त्री से सम्बन्धित है। शक्ति स्त्री ही है। ईश्वर की शक्ति यदि छीन ली जाय तो फिर उसकी हैसियत ही क्या रहेगी? इसको प्रत्येक विवेकी पुरुष जान सकता है। संस्कृत कोष में जितने उपयुक्त शब्द प्रयोग किये गये हैं। सब स्त्री लिंग हैं। इनमें कोई भी पुल्लिंग नहीं हैं। फिर कोई न कोई कारण तो अवश्य होगा। ऋषियों ने येशब्द बिना सोचे समझे नहीं गढ़े हैं। शास्त्र कहते हैं 'त्रिया चरित्रम् पुरषस्य भाग्यम्, ब्रह्मा न जानाति कुतो मनुष्यः' अर्थात स्त्री के गुणको वेदों के रचने वाला ब्रह्मा भी नहीं जानता, फिर और किसी पुरुष के बारे में क्या कहा जाय।"

नन्दी ने जोर से कह कहा मारा। 'तेरी बुद्धि पर पत्थर पड़े हैं। यदि पुरुष न हो तो स्त्री कुछ नहीं कर सकती। धर्म के तथ्य को तूने गलत समझा है। ईश्वर से ईश्वरीय सृष्टि बनाई गई है। समस्त ऐश्वर्य इसी ईश्वर से बनाये गये हैं। तेरी तर्क के झूठा करने के लिये केवल एक ही विचार पर्याप्त है। स्त्री बिना पुरुष के कुछ नहीं कर सकती।"

कमला मुस्कराई।

क्या नहिं त्रियाकरि सके, क्या नहिं सिंधु समाय।
क्या नहिं पावक में जरे, काहि काल नहिं खाय॥

"बहिन! स्त्री सब कुछ कर सकती है।"

नन्दी बोली—

सुत नहि अवला जन सके, मन नहिं सिंधु समाय।
काल न पावक में जरे, आत्म काल नहि खाय॥

"तूने यह दोहा नहीं सुना।"

कमला की आँखें चमक उठीं। "तू शास्त्र के आशय से अभिज्ञ है। क्या वह उनमें नहीं लिखा है कि आदि शक्ति ने

ब्रह्मा, विष्णु और महेश को स्वयं रचा है। यदि तू यह न मानेगी तो ऋगवेद के 'शन्नो देवी रविष्टय को' हड़ताल लगा दे क्या देश में जोरशोर से शक्ति पूजा का रिवाज नहीं है?"

नन्दी कुछ और कहने को थी किन्तु मन ही मन में मैं कमला की बात की समर्थक थी क्योंकि उसकी बातें मुझे अधिक अच्छी लगती थीं।

मैंने कहा—"अच्छा धार्मिक दृष्टि कोण से तो मैंने स्त्रियों की बड़ाई सुनली। अब व्यवहार को दृष्टि से भी कुछ कहो।"

नन्दी ने कहा—"यकतर्फा निर्णय तो ठीक नहीं होता। मैं उसकी दलील को काट सकती हूँ।"

कमला बोली—"नहीं, शास्त्रों को देख काली शिव को अपने पाँव के नीचे दबाये हुये नाचती है। सीता न होती तो राम किस प्रकार रावण को जीत लेते। गायत्री के बिना वेद तक निष्प्राण रहते। क्या यह झूठ है?"

मैं बोली—"बाद विबाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत है; मैं इसको बढ़ाना नहीं चाहती।"

कमला पहिचान गई कि मैं उसकी समर्थक हूं। उसका साहस बढ़ा।"

कमला ने कहा—"स्त्री के बिना पुरुष का कोई कर्म विश्वास नहीं करता। वह उढ़ाऊ चूल्हा कहा जाता है। न लोक का न परलोक का। कौनसा यज्ञ है जो बिना स्त्री के पूर्ण होता हो। तुलसी के पत्ते सदा सालिगराम के सिर पर चढ़ाये जाते हैं। अविवाहित पुरुष को शहरों के मुहल्लों में कौन बसाता है! रामायण और महाभारत के युद्ध केवल स्त्रियों के कारण हुये। घर ग्रहस्थ का सब काम स्त्रियों से सम्बन्धित है। नाच रंग का प्रबन्ध स्त्रियों से ही होता है। आदमी तो निखट्टू होता है। वह कुछ नहीं कर सकता। स्त्री घर में न हो तो वह निकम्मा

होकर जंगल की धूल छानता फिरे और जंगलियों का जीवन व्यतीत करे।"

नन्दी बोली—"तू केवल उज्वल पहलू देखती है। स्त्री के अंधेरे पहलू पर तेरी दृष्टि नहीं पड़ती। क्या स्त्री जाल में फंसाने वाली नहीं कहलाती ?"

कमला ने कहा—'यह भी उसके बुद्धि और विवेक का प्रमाण है। तू स्वयं सिद्ध कर रही है कि पुरुष ऐसे मूर्ख और अविवेकी होते हैं कि स्त्रियों के चंगुल में फस जाते हैं। सोचो फिर स्त्री शक्तिशाली हुई या पुरुष। इसके अतिरिक्त जिसे तू इस समय स्त्री का माया जाल कहती है उसके बारे में भी सुनले। कपिल मुनि ने कहा है कि प्रकृति मुक्ति और भोग दोनों की देने वाली है। मोक्ष स्वयं क्या है ? उसके रूप पर थोड़े लोग विचार करते हैं। मुक्ति शान्ति का नाम है और मुक्ति, शांति भक्ति यह भी सब शब्द ऐसे ही हैं। तेरी ही बात से स्त्री का बड़प्पन सिद्ध है।"

नन्दी बोली—"तू बात का बतंगड़ करती है।"

कमला ने उत्तर दिया—"तेरे पास दलील तो कोई है नहीं। यदि तेरी इच्छा वितंडावाद करने की हो तो मैं तेरी बातों के खंडन के लिये काफी सामिग्री रखती हूँ। क्या शास्त्र स्त्री को बलदा, बुद्धिदा, अन्नदा नहीं कहते। फिर इससे अधिक तू चाहती क्या है ? अब कौनसी बात बाकी रह गई जिसके लिये तू झगड़ती है।"

नन्दी ने कहा—"स्त्री लाख बुद्धिमान हो मगर वह रण क्षेत्र में युद्ध नहीं कर सकती और बिना युद्ध समाज में शान्ति रखने का प्रबन्ध कभी हो नहीं सकता।"

कमला ने उत्तर दिया—"तू स्त्रियों के लिये लज्जा का कारण है। अपनी जाति का समर्थन तो करती नहीं, चली है

पुरुषों के गुण गाने। यद्यपि शास्त्रों ने स्पष्ट रूप से वर्णन कर दिया है कि स्त्री सब कुछ कर सकती है। पहिले स्त्री और पीछे पुरुष का नाम लिया जाता है। सीता राम, राधा कृष्ण, गौरी शंकर आदि आदि शब्दों की बनावट पर क्यों विचार नहीं करती! पुरुषों ने स्त्रियों को अन्याय से अपनी सेविका बना रक्खा है। वह समझते हैं कि स्त्रियां उनके मन बहलाव के खिलौने हैं। कुछ अज्ञानी तो इन्हें पाँव की जूती की पदवी देते हैं और तुच्छ बुद्धि प्रसिद्ध कर रक्खा है। अज्ञानी न शास्त्रों को मानते हैं, न अपने अनुभव से काम लेते हैं। क्या तू नहीं जानती कि स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक सुन्दर, सभ्य और शिष्ट होती हैं। स्त्रियां न हों तो पुरुष अत्यन्त असभ्य बने रहें। स्त्रियां ही इन्हें सच्चा आदमी बनाती हैं। पुरुषों की गुरु माता ही मानी जाती है। पिता से माता का हक सन्तान पर दस गुना समझा जाता है। फिर इसमें कोई सचाई भी तो होगी!"

नन्दी दबी जबान से बोली—"मगर आचार्य का हक तो सौ गुना और हजार गुना है।"

कमला बड़ी तीव्र बुद्धि वाली थी। कह उठी—"मगर आचार्य क्या पुरुष ही हुआ करते हैं? यह तेरी भूल है। स्त्रियों को भी आचार्य का अधिकार प्राप्त है।"

नन्दी ने कहा—"दावा बिना समर्थन के मानने योग्य नहीं होता।"

कमला ने उत्तर दिया—"अज्ञानी! जहाँ पुरुषों ने वेद के मन्त्र से सम्बन्ध रक्खा है वहाँ लोपमुद्रा अगस्त्य ऋषि की धर्म पत्नि का भी वर्णन आया है। इसलिये ऋगवेद के मन्त्र से वेदान्त का विषय निकला और इस दृष्टि से वेदान्त की प्रथम आचार्य लोप मुद्रा ही है।"

मैंने देखा कि बहस बढ़ती जारही है, मैंने उन्हें रोक दिया।

मैंने कहा—"बस बस ! अब इस वाचक युद्ध को समाप्त करो। कमला ! तुम यह बताओ कि बिना पुरुषों की सहायता के क्या स्त्रियाँ राज्य का प्रबन्ध कर सकती हैं।"

कमला ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं ! पुरुषों ने अपनी गलत समझ से स्त्रियों पर बड़े बड़े अत्याचार कर रक्खे हैं। उन्हें बिना सोचे समझे अपने आधीन बना रक्खा है। उनको विद्या और बुद्धि की ओर से उदासीन और निकम्मा बना दिया वर्ना क्या मजाल थी कि कोई पुरुष उनके मुकाबले में पदाधिकारी हो सकता। केवल शिक्षा और सुधार की आवश्यकता है। शिक्षा सब कुछ कर सकती है। स्त्रियों को शिक्षित होने दो। फिर देखो वह क्या नहीं कर सकती। महारानी ! यदि मैं आपकी तरह इस देश में अधिकारी होती तो चमत्कार कर दिखाती। एक पुरुष को भी जिम्मेदारी का काम सुपुर्द न करती। हर एक काम स्त्रियों से ही कराती।"

मैं मुस्कराई—"कमला ! इस समय तो तूने मेरे मन की बात कही है। मेरा भी यही विचार है।"

कमला बोली—"तो देर न कीजिये। अवसर है। स्त्रियों का भाग्य जाग गया है कि आप महारानी बनी हैं। इस विचार को कार्य रूप में परिणित कीजिये और संसार में त्रिया राज्य का आदर्श प्रस्तुत कीजिये।"

मैंने कहा—"स्त्रियां अस्त्र शस्त्र विद्या को नहीं जानती।"

कमला ने उत्तर दिया—"मैं इस कला में प्रवीण हूँ। राज पूतिनी होने के कारण मेरे पिता ने इसमें मुझे पूर्ण बना दिया था।"

मैं बोली—"यदि तुझमें ऐसी योग्यता है तो मैं कल से तुझे सेनापति का पद दूंगी।"

कमला ने कहा—"मैं इस काम को भली प्रकार कर सकूंगी

मगर पहिले शीघ्रता न कीजिये ताकि पुरुष चौकन्ने न होने पावें। मैं मर्दाने भेष में सेना का कमान करूँगी और धीरे धीरे अवसर देखकर स्त्रियों के रिसाले बनाऊँगी। जब पलटन के सिपाहियों का काम स्त्रियाँ करेंगी और उनका स्थान लेलेंगी तो पुरुषों को एक एक करके निकाल दूँगी।"

मैं हँसी—"तुझे पुरुषों से बड़ी घृणा है?"

कमला बोली—"बात कुछ ऐसी ही है। मेरा बस चले तो इन निर्दईयों को लोहे के चने चबाने को विवश करूँ।"

मैंने कहा—"प्रधान (मुख्य मन्त्री) कौन होगा?"

कमला ने उत्तर दिया—"नन्दी, क्योंकि इसमें संयम शक्ति, कूटनीति से काम लेने और सबको खुश रखने की योग्यता है। मैं तेज तलवार हूं।"

मैंने कहा—"तुम दोनों मर्दाना भेष में आओ। तुम्हारा नाम कमलसिंह और इसका नाम नन्दूसिंह होगा और कल ही से मैं त्रिया राज की नींव रक्खूँगी।"

दूसरा प्रकरण

राज्य का प्रबन्ध

राज योग है एक सम, समझे बिरला कोय।
जो समझे सो चतुर नर, लहे परम पद सोय॥

विश्वामित्र और करने दस बारह मास के पश्चात काशी जी से लौटे। उन्हों ने देखा कि लगभग सब पद नये २ आदमियों के हाथों में हैं। सेना सुसज्जित है। कार्य्यालय नियमानुकूल हैं। नये नये महकमे खुल गये हैं। पाठशालाओं की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस थोड़े से समय में नगर दुलहिन की तरह सुन्दर बन गया है। बहुत से मकान इस

तरह के बन गये हैं जिनका नक्शा विचित्र है। एक प्रकार की दुकानें एक जगह और दूसरी तरह की दूसरी जगह हैं। बाजार में व्यापार का काम जोर पर है और यह सब काम स्त्रियों ही ने किया जो मर्दाना लिबास और मर्दाना नाम से नौकर रक्खी गई हैं। उनको देख कर आश्चर्य हुआ। राज्य के प्रबन्ध को पहिले से अधिक नियमित और दृढ़ पाया।

मैंने पूछा--"काम कर आये?"

दोनों ने लज्जा से गर्दन झुकाई—"सरकार की आज्ञा का पालन किया गया।"

मैं बोली—"कुछ ख्याल न करो। जो होना था वह हो गया। मैं इस दुर्घटना को बिल्कुल भूल गई हूँ। तुम्हारे मान सम्मान में कोई अंतर नहीं आया। सब लोग यह जानते हैं कि तीर्थ यात्रा को गये थे।"

दोनों ने दबी जुबान से कहा—"यह सरकार की विशेष कृपा है।"

मैंने कहा—"काशीजी का कुछ समाचार सुनाओ।"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"काशी की लीला विचित्र है। गगन चुम्बी भवन अपना बड़प्पन प्रगट कर रहे हैं। गंगा वहाँ शिवजी की कमान के रूप में उत्तर की ओर बही है और उत्तर वाहिनी कहलाती है। घाट पक्के, सीढ़ियाँ सुन्दर और पक्की, नगर हरा भरा, दुकानें सुसज्जित, नगर वासी सुसभ्य और धर्मात्मा। तीन बजे रात्रि से वह गंगा के किनारे आकर नहाते हैं और हर हर कहते हुये शिव भगवान की स्तुति के श्लोक पढ़ते हैं। दस बजे तक गंगा किनारे आदमियों का जम घट भरा रहता है। काशी मंदिरों का शहर है। अकेले शिव भगवान के सवा लाख मंदिर हैं। दुनिया सच कहती है कि काशी

तीन लोक से न्यारी है। वहां के वासी दूसरी जगह जाना पसंद नहीं करते। मैं चाहता था कि किसी पंडित को यहां लाऊं मगर उसने कह दिया—

चना चबेना गंगजल जो पुरवें करतार।
काशी कबहुँ न छांड़िये विश्व नाथ दरबार।

मैंने पूछा—"क्या काशी जी से कुछ प्रशाद भी लाये हो?"

दोनों ने अधिक संख्या में बर्तन भांडे, रेशमी रामनामी वस्त्र, ताड़ पत्र पर लिखी हुई संस्कृत की पुस्तकें प्रस्तुत कीं। यह सामान अब तक उनके सेवक बाहर लिये खड़े थे। संकेत पाकर अन्दर आये। मैं उन वस्तुओं को देखकर प्रसन्न हुई। इनको पारतोषिक में पोशाक, आभूषण, अशर्फी और हीरे दिये। उन्होंने समझा कि मैं सचमुच लाघव की घटना को भूल चुकी हूँ मगर यह विचार गलत था। लाघव मेरा प्रेमी था। यह मन पहिले उसी की ओर आकर्षित हुआ था। ऐसे बावफा की याद कब हृदय से जाने वाली थी मगर राजाओं का व्यवहार कूटनीति के साथ हुआ करता है। वह किसी को अपना अन्तरीय भेद भाँपने नहीं देते। इस कारण इनाम आदि देने की विवशता थी।"

करन ने पूछा—"अब हमारे लिये सरकार की क्या आज्ञा है?"

मैंने कहा—"प्रसन्न रहो। सुख शाँति का जीवन व्यतीत करो और मैं क्या कहूँ।"

यह शब्द सुनकर वह चौकन्ने हुये। चोर की दाढ़ी में तिनका! फिर वह दरबारी थे। एक एक बात की जड़ को पहुँचने वाले!"

विश्वामित्र ने राज्य प्रबन्ध की प्रशंसा करने के बाद कहा—"मेरे लिये क्या आज्ञा है?"

मैं हंसी—"तुम दोनों ही के लिये मैंने अपना भाव प्रकट कर दिया।"

विश्वमित्र ने कहा–"शान्ति और सुख तो आपके चरणों में रहता है। मेरा प्रश्न काम काज के विषय में था।"

मैंने दर्द भरे स्वर में उत्तर दिया–"मुझे हर तरह तुम्हारे सम्मान की रक्षा स्वीकार है। तुम्हारी आयु का अधिक भाग देश सेवा में बीता है। अब तुम बूढ़े हुये। कुछ ईश्वर का भी भजन करो। मनुष्य को अन्त में एक दिन दुनियाँ से जाना है। प्रकृति चाहती है कि बूढ़ों की जगह युवक काम करें। आदमी आयु पर्यन्त दुनियां के झगड़े बखेड़ों में पड़ा रहना नहीं चाहता। तुम ने सब सुन लिया होगा कि हर जगह युवक नियत कर दिये गये हैं। सेना पहिले से अधिक सुसज्जित है। किलों की दृढ़ता को अधिक ध्यान दिया गया है। राजकोष धन दौलत से भरा है। आमदनी के बहुत से साधन निकाले गये हैं। व्यापार उन्नति पर है। बराबर के राजाओं के दरबार में नये नये बुद्धिमान वकील और राजदूत भेजे गये हैं ताकि उनकी चेष्टाओं की जानकारी रक्खें। मैं तुम्हारी अनउपस्थिति में बेसुधि नहीं थी। मैंने यथाशक्ति श्रेष्ठतर प्रबन्ध किया है। तुम देखकर खुश हुये होगे। मैंने सोचा कि अब राज्य का भार शक्तिशाली व्यक्तियों की गर्दन पर रखना चाहिये। तुम लोगों के आराम के लिये मैंने जागीर और पेंशन का प्रबन्ध सोच रक्खा है। मेरी इच्छा है कि तुम कल नियमानुसार त्याग पत्र दे दो मगर यह न समझना कि तुम नितान्त स्वतंत्र किये जा रहे हो। समय समय पर बुलाये जाने पर तुम को दरबार में आना होगा ताकि मैं तुम्हारी सुमति का लाभ उठाती रहूं।"

उनके पांव के नीचे की जमीन खिसकने लगी मगर देर

तक मौन रहे।

विश्वमित्र ने कहा-"हम को अपने कर्म का कठोर दंड दिया गया। उसकी आशा नहीं थी।"

करन ने कहा—"इच्छा तो यह थी कि कुछ दिनों और राज सेवा का गौरव प्राप्त रहता।"

मैं हंसी-"सेवा करने का अवसर तो अब तक है। मैं तुम को निठल्ला तो नहीं बनाना चाहती। तुम अपनी राय और मशवरा की सेवा करते रहो। अब तुम जाओ। मुझे दरबार में जाना है।"

दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मैं पहिले ही से हठीली प्रसिद्धि थी। उन्होंने इसे अन्तिम निर्णय समझ लिया। उनकी आशायें निराशा में बदल गईं। अप्रसन्न होकर चले गये।

मुझे सन्देह हुआ कि कहीं यह राज के लिये खतरनाक न सिद्ध हों। इस दृष्टि से कमला और नन्दी को बुला भेजा और उनकी राय से दस नई स्त्रियों को गुप्तचर नियत किया जो उनके घरों में रहकर देखती रहें कि वह क्या करते हैं।

मैं साधारण रूप से राज का काम अधिक दृढता से करने लगी और गुप्तचर विभाग को इतना बढ़ाया कि नदियों के घाट, कुओं के दहाने, मठ मन्दिरों पर तात्पर्य कि हर जगह मेरे जासूस रहकर देश वासियों के हालात और विचारों से सूचित करते रहें। सरहदों पर नये नये क़िले बनवाये। कुल देश को सशस्त्र रहने की आज्ञा दी। शास्त्रागार का उचित प्रबन्ध किया। बन्जर भूमि उपजाऊ करादी गई। नहर निकाली गयीं। नये ढ़ंग के औजार विदेशों से मंगवाकर वर्ष में तीन तीन फसलें तैयार करने के आदेश दिये ताकि देशवासी खुश-हाल हों और अकाल का कष्ट न उठायें। जो व्यक्ति कोई नया

आविष्कार करता, इनाम से माला माल कर दिया जाता था। यह कार्य मैंने केवल स्त्रियों ही से लिया। स्त्रियों की बुद्धि विचित्र होती है। थोड़े दिनों में कामरूप देश कुछ का कुछ बन गया। मैं ने केवल इतना ही नहीं किया किन्तु गुप्तचरों की देखभाल के लिये भी दूसरे जासूस नियत किये ताकि जासूस स्त्रियां पुरुषों के जाल में फंसकर कहीं राज के भेद को न खोल दें। उन स्त्रियों में जो अधिक जिम्मेदारी का काम करती थीं लगभग सब मेरी शिष्या थीं। मैंने जादू की पूरी विद्या किसी को नहीं सिखाई थी। भय था कि कहीं कोई मेरी शत्रु न बन जाय।

तीसरा प्रकरण

मुर्दों की दुर्गति

प्रेम प्रेम से प्रगट हो, प्रेम प्रेम की दात।
जहाँ प्रेम परगट नहीं, तहं प्रगटे उत्पात॥

विश्वामित्र और करन नित्य प्रति मिला करते थे। इसकी सूचना गुप्तचर बराबर पहुँचाया करते थे। उन्होंने त्याग पत्र दिया और मैंने जागीर और पेंशन नियत कर दी। उस दिन के बीतने पर उन को ज्ञात हो गया था कि देश के अधिकारियों में स्त्रियां अधिक हैं। यह बात छिपी तो नहीं रह सकती थी। एक दिन दोनों मेरे पास मिलने आये।

मैंने हंसते हुये पूछा–"कहिये आप लोगों को कोई शिकायत तो नहीं है?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया–"आपके राज्य में शिकायत किस को हो सकती है? सब समृद्धशाली हैं मगर मैं आज आपको नेक सलाह देने आया हूँ।"

मैंने कहा—"वह क्या है ?"

विश्वमित्र बोला—"आप को शिक्षा देना सूर्य को दीपक दिखाना है। फिर भी आपके पिता की हैसियत रखता हूं।"

मैंने कहा—"इसमें सन्देह ही क्या है ? मैं भी आप को पिता जी के तुल्य मानती हूँ।"

विश्वमित्र को अधिक कहने का साहस हुआ। "तब ही तो मैं उपस्थित हुआ हूं।"

मैं बोली–"कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं ?"

विश्वमित्र ने कहा—"और तो सब ठीक है। आप जो पुरुषों का काम स्त्रियों से ले रही हैं वह राज्य को हानिकर होगा।"

मैंने पूछा–"क्यों ?"

विश्वमित्र ने उत्तर दिया—"स्त्रियाँ केवल घर की शोभा हैं। बाहर के काम काज के लिये उनमें योग्यता कहां है ?"

मैं हंसी–"पिताजी ! फिर आपने मुझे रानी क्यों बनाया है।"

विश्वमित्र ने कहा–"यह दूसरी बात है। इसमें इतनी हानि नहीं थी।"

मैं मुस्कराई–"बात तो एक ही है। जब रानी देश की शासक रहे तो फिर दूसरी स्त्रियों को क्यों अपनी योग्यता दिखाने का अवसर न दिया जाय।"

विश्वामित्र ने कहा—"आपने अन्धेर कर दिया। प्रधान और सेनाध्यक्ष तक स्त्रियां ही हैं और दफ़्तरों में कर्मचारी भी स्त्रियाँ ही हैं।"

मैं हंसी—"जब स्त्री राजा होगी तो मन्त्री और सेनाध्यक्ष को भी स्त्री होना चाहिये। क्या दरबारी अफसर अपने जैसों को दरबार में रखने की शिफारिश नहीं करते।"

विश्वमित्र ने कहा–"मैं शुभचिन्तक होने के नाते मशवरा

देने आया हूँ। बहस करने नहीं आया। मेरे और सेनाध्यक्ष के लिये लज्जा की बात है कि हमारे उत्तराधिकारी स्त्रियाँ बनाई जाँय।"

मैंने कहा—"मगर आपने पिताजी से विरोध नहीं किया और न उन्होंने मेरे राजगद्दी पर बैठने में लज्जा प्रकट की।"

विश्वमित्र बोला—मैं समझ गया। आप मेरी कभी भी न सुनेंगी। आज्ञा दीजिये हम दोनों काशी चले जाँय और साधु बन कर वहां रहें। यह अपमान पसन्द नहीं है। कौन जान राज्य की कमजोरी का पता पाकर कोई शत्रु दौड़ पड़े और हमसे कुछ करते धरते न बनें।"

मैं फिर मुस्कराई—"तो यह कहिये कि अपको प्रायश्चित करने की सूझी है।"

करन बोला—"महारानी! यह हँसी का समय नहीं है। हमारा बध कर देना इस अपमान से अधिक अच्छा था।"

मैंने कहा—"तो आप भी प्रधान जी से सहमत हैं। काशी जाने का विचार कब है?"

विश्वमित्र बोला—"केवल आपकी आज्ञा की देर है।"

मैंने उत्तर दिया—"मैं खुशी से आज्ञा देती हूं। धर्म के काम में विरोध करना पाप का भागी बनना है। आप लोगों को रोक कर कौन अधर्मी बने।"

दोनों ने नमस्कार किया, बिदा हुये और दूसरे ही दिन सूचना मिली कि वह काशी की ओर चले गये मगर मुझे विश्वास नहीं था। उनके जाने पर मैंने जासूसी विभाग के मन्त्री से इनका हाल पूछा। उसने बिल्कुल अन जानकारी प्रगट की। फिर भी पुराने दरबारी थे कब किसी को भांपने देते मगर मैं दूसरी तरह की थी। इस विषय पर बराबर सोचती रही। दो सप्ताह बीत गये। मुझे वह लड़की याद आई जिसपर जादू का

अमल किया गया था। वह प्रातः काल को आई। मैंने उसके सिर को जादू के डंडे से छू दिया। वह बेहोश हो गई।

मैंने कहा—"लाघव को बुलाओ।"

लाघव ने आते ही पूछा—"मुझे क्यों बुलाया गया?"

मैंने कहा—"मैं यह जानना चाहती हूँ कि इस समय विश्वामित्र और करन कहां हैं? ज्ञात करो।"

लाघव ने कुछ देर में उत्तर दिया--"वह मनीपुरके राज्य में हैं जिसके राजा के साथ तुम्हारी मंगनी होने वाली थी।"

मैंने पूछा—"वह क्या कर रहे हैं?"

लाघव बोला—"तुम्हारे विरुद्ध षडयन्त्र हो रहा है। वह मनीपुर के राजा को उकसा रहे हैं और कह रहे हैं कि काम रूप में त्रिया राज है। युद्ध का अवसर है। स्त्रियों पर विजय पाना कितनी बात है और राजा इस पर विचार कर रहा है।"

मैंने प्रश्न किया—"वह किस भेष में हैं?"

लाघव ने उत्तर दिया—"दाढ़ी मूँछ साफ करादी हैं। गेरुआ वस्त्र पहिने हुये शकल सूरत इस प्रकार बना रक्खी है कि किसी को सन्देह तक नहो कि यह प्रधान और सेनापति हैं।"

मैंने पूछा—"मैं क्या करूँ?"

लाघव ने राय दी--"मनीपुर की कई स्त्रियां कामरूप में ब्याही हैं। उनमें से कई एक तुम्हारी शिष्य हैं। उनके द्वारा उस देश की स्त्रियों में जादू की विद्या का प्रचार करो। वहां की युवा स्त्रियो को मर्दाना भेष में सैनिक सेवा का आदेश दो। प्रत्येक व्यक्ति बेवफाई कर सकता है मगर शिष्य और शिष्यायें गुरू से कठिनता से विरुद्ध चल सकती हैं। यह मेरी राय है। तुम अपनी सेना अच्छी तरह सुसज्जित करो। वहाँ भी नई भरती होगी और जल्दी की वजह से कोई भी जानकारी न कर सकेगा। वहाँ स्त्रियाँ सिपाही बन कर रहें।"

मैंने पूछा--"मान लिया जाय कि यदि राजा ने आक्रमण किया तो विजय किसकी होगी ?"

लाघव ने कहा—"यह न पूछो। रूहों को मालिक की ओर से ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने की मनाई है।"

यह कह कर लाघव चला गया। लड़की होश में आगई। मुझे अपने मतलब की बात सूझ गई।

मैंने कमला और नन्दी से मंत्रणा की। वह मुझ से सहमत हुई। स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक समाज प्रिय होती हैं। पुरुष तो कभी मिलते जुलते तक नहीं। स्त्री को बिना मिले जुले चैन नहीं आता। मेरी शिष्याओं ने सरलता से मनीपुर की स्त्रियों को अपने आधीन कर लिया। वह उस देश में गईं और थोड़े समय में न केवल मेरे जैसे विचार का मंडल वहाँ बन गया किन्तु उस देश की सेना में बहुत सी क्वारी स्त्रियों ने रंग रूटों में नाम लिखाया। इनमें कुछ तो जासूसी का काम भी देने लगीं।

मैंने उनके साथ अंकों द्वारा पत्र व्यवहार का क्रम चालू किया। संस्कृत में ५२ अक्षर होते हैं। एक एक अक्षर के लिये एक एक अंक इस तरह नियत किया कि इस युक्ति की किसी को जान कारी न होने पावे और मुझे तनिक तनिक बात की सूचना मिलती रहे। यहाँ पर मैंने अनगिनत स्त्रियों को बलपूर्वक सेना में भर्ती होने की आज्ञा दी।

विश्वामित्र और करन की चाल से मुझे पुरुषों से और भी घृणा होगई। मैंने घोषणा करदी कि काम रूप देश में कोई मर्द दाढ़ी मूँछ न रक्खे। इनके कारण विवाहित स्त्रियों को बड़ा कष्ट होता है। विश्वामित्र और करन की जागीरें जब्त करली और उनके सम्बन्धियों को नजर बन्द रखने का प्रबन्ध किया।

अब काम रूप देश में खुल्लम खुल्ला त्रिया राज का सिक्का चालू होगया।

किस को ध्यान था कि स्त्रियां भी दुनियां में शाशनाधिकरी हो सकेगीं। पुरुष तो इन्हें काठ की पुतलियां समझते थे। जिस तरह चाहते थे नाच नचाते रहते थे। न इन मूर्खों को बुद्धि थी न अवसर वादी थीं। पुरुषों ने जो कुछ कहा उसे अक्षरसः ठीक मान लिया, और लुत्फ यह कि पुरुषों ने इन के कान में यह मंत्र फूंक दिया कि सिवाय पति के उनका और कोई न तो गुरु है न परमेश्वर है। पति यदि कोढ़ी दुष्ट भी होतो वह पूजने योग्य है। स्त्रियाँ ऐसा ही करती चली आरही थीं। मैंने इस विचार को बहुत कुछ दूर किया और पुरुषों के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न करना चाहा कि स्त्री शक्ति है। यदि कोई स्त्री बुरी भी तो पुरुष उसे साक्षात् लक्ष्मी, देवी और सरस्वती समझे।

चतुर्थ प्रकरण

स्त्रियों की सभा

हिल मिल चलिये जगत में, मिल जुल कीजे काज।
मिल जुल रहिये आप में, कभी न आवे लाज॥

संकल्प की लहर प्रबल होती है। मैंने पहिले ही कहा है। जब किसी प्रबल संकल्प की धार किसी के मस्तिष्क से निकलती है तो उस चित्त वृति वाले दुनियां में जितने होते हैं सब के सब प्रभावित होजाते हैं। कोई उपदेशक किसी सभा में व्याख्यान दे रहा है। जिभ्या से शब्द के निकलते ही जिन के हृदय उसके अनकूल होते हैं उन पर बिजली जैसा प्रभाव पड़ेगा। शेष कोरे के कोरे रह जायेंगे। इसी प्रकार विचार की

धार का नियम है। शब्द और विचार का प्रभाव कभी व्यर्थ नहीं जाता। लोगों की इच्छा यदि सुधार की हो तो उन्हें नित्य प्रति शुभ संकल्प दिया जाय। वह शीघ्र सुधर जायेंगे और इस में इतना परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।"

पुरुषों ने निर्दोष स्त्रियों को पीड़ित और शासित कर रक्खा था। रानी से लेकर भिखारिन तक सब पुरुषों की बे पैसे की सेविका बन रही थीं। स्त्री ने पुरुष के साथ विवाह किया कि आयु पर्य्यन्त सेवकाई का पट्टा लिख दिया। पुरुष तो दुनियां के दृश्यों से बाहर भीतर हर जगह आनन्द लूटा करे और बेचारी स्त्रियां घर में रह कर चूल्हे चक्की के खूंटों से पशुओं की तरह बंधी रहें। पुरुष तो पढ़े लिखे, राज दरबार में मान सम्मान प्राप्त करे और दीन दुखिया स्त्री चार दीवारी से बाहर न निकलने पावे। पुरुष जो चाहें करें मगर स्त्री को मन वाणी की स्वतन्त्रता का बिल्कुल अधिकार नहीं रहा। पुरुषों ने समझा कि यह इन पशुओं के बांध रखने का अच्छा नुसखा हाथ आया। दो सेर के कड़े पावों में डाले। छड़े, पायजेब, छागल, घूंघर, साँगरपेरी, झांझ से उनके टखनों को जकड़ कर बाँध दिया ताकि यह मानव रूप के पशु दौड़ न सकें। यदि कहीं घर से जाना चाहें तो उनका पांव आवाज देकर सावधान करदे और वह चल न सकें। हाथों को पहुँची, कंगन, चौहादन्ती, कड़े, छन, पछेली, रतन चौक, पचफूल, चूड़ियां और धातुओं की जंजीरों से बांधा। गले में हार, जुगनू, हमेल, हसली, चम्पा कली, पचलड़ी माला, गुलूबन्द कन्ठे गढ़ गढ़ कर डाले। भुजाओं में जोशन, बजामेठ, बाजूबन्द अन्त आदि पहिनाये कमर को कोंधनी और जंजीरों से जकड़ा हाथ की उँगलियां तक खाली न रहने पाईं। छल्ले, छल्ली, बक छल्ली, अँगूठी, घूंघरू दार अँगुठियां बनवाई। पांव की उँगलियों के लिये अनवट,

बिछिया, महाबर आदि का उपाय निकाला। माथे को बजली, टीका, झूमर से मढ़ा और इन अज्ञानी पशुओं को अपनी जान कारी में आभूषण रूपी रस्सियों से वैसा ही बाधा जैसे खूंटे से बैल और गाय बांधे जाते हैं। मूर्ख स्त्रियो! तुम समझती हो पुरुष जेवर लाकर देते हैं। यह ख्याल नहीं है कि यह मोटे रस्से हैं जो तुमको हिलने डोलने से रोके रखते हैं। जब कूट नीति की यह चाल चल गई तो पुरुष अपने मनमें हंसने लगे और इनको तुच्छ बुद्धि समझकर इनकी ओर बेसुध रहने लगे। स्वतन्त्रता गई और वे पैसा की बांदियाँ स्वयं घरों के कारागार में बन्द होगईं। मैं दुनियाँ में शायद पहिली स्त्री हूं जिसने इस विषय पर गौर किया है। अमीरों के घरों की स्त्रियां सोने चांदी के रस्सों से जकड़ी हुई हैं। गरीबों की स्त्रियां काँसी पीतल की भारी जंजीरों से बाँधी गई हैं। जिनकोयह भी उपलब्ध नहीं हैं उनको कौड़ियों, पोतों और हड्डियों के घृणित जेवर दिये गये ताकि संसार की सब स्त्रियां पुरुषों के आश्रित होजांयें। लोना चमारी ने स्यालकोट जाते हुये भारतीय और पंजाबी स्त्रियों की दशा मुझे लिखी थी। भारत के लोगों ने तो स्त्रियों को बुरी तरह जकड़ा था। पंजाबियों ने और ढंग निकाला। हाथी दाँत के भद्दे चूड़े कलाई से भुजा तक डाल दिये और विवाह के अवसर पर कौड़ियों की लम्बी लम्बी मालाओं से उनको जकड़ रखने का प्रबन्ध किया। मैं उनकी दुर्गति क्या कहूँ। कान तक छेद दिये। बेर, लोंग, करनफूल, झुमके, बुलाक, मोती, कील, बाले, बालियां आदि उनके छिद्रों में डाल दिये गये और स्त्री नाक कान छिदी हुई लौंडियों की हैसियत में आ गई। शोक तो यह है कि इस अभागी सेविका का सिर तक बंधने से नहीं बचा। सिर तक फन्दों से स्वतन्त्र नहीं। यह उनकी दशा है। चीन देश के अशुभचिन्तक पुरुष यदि जेवर नहीं

बनाते तो पैदा होते ही लड़कियों के पावों को छोटी जूतियों से कस देते हैं ताकि उनका पाँव बढ़ने न पावे और चल फिर न सकें। उन तुच्छ विचार वाली स्त्रियों को यह पट्टी पढ़ाई कि जिस स्त्री के पांव बहुत छोटे होते हैं वह सबसे अधिक सुन्दर गिने जाने योग्य हैं। असली मन्तव्य तो उनको कैद रखने का था। बात बना बनाकर इन सीधी साधी स्त्रियों को अपने जाल में फँसा लिया। आप तो अनेक विवाह करें और स्त्री अपने इन्द्रियों के उद्वेगों को रोक रक्खे। यह कहाँ का न्याय है। शास्त्र तो यह कहते हैं कि स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी है मगर पुरुषों ने उनके यह अधिकार बिल्कुल छीन लिये और इन्हें कहीं का न छोड़ा। सिर से लेकर पांव तक प्रत्येक अंग पर गुलामी की मुहर लगा दी। कहां तक कहूं मुझे स्त्रियों की विवशता पर खून के आंसू बहाने पड़ते हैं। सब से अधिक अत्याचार यह किया गया कि इन्हें शास्त्र, वेद और ग्रन्थों के पढ़ने और शब्द ज्ञान होने तक की आज्ञा नहीं ताकि पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन से उनकी आंख न खुलने पावे। इस पर भी तुर्रा यह कि उनके वस्त्र ऐसे ढीले ढाले बनाये जिनके कारण शरीर में स्फूर्ति और चपलता न आने पावे। जगह जगह इनकी देह गोदने से अङ्कित कर दी कि भाग जाने पर यदि स्त्री पकड़ी जाये और अदालत में मुकदमा चले तो पहिचानने में कठिनता न हो। अत्याचार की हद हो गई।"

"मैंने कामरूप देश की स्त्रियों की सभा जोड़ी। मैं स्वयं उसकी सभापति बनी। विमला को मंत्री बनाया और समय समय पर स्त्रियों को अपने बचनों से चेतन्य करने लगी।"

एक सभा में विमला ने बड़ा अच्छा व्याख्यान दिया था। उसने कहा—"बहिनो! पुरुषों ने हम पर बड़े अत्याचार किये। ऐसे अत्याचार मनुष्य ने कभी पशुओं तक पर नहीं किये।

हमारी यह स्थिति पशुओं से भी गिरी हुई है। पुरुष कवियों ने कहा है:—

नारी नर की खान है, नारी नर्क की कुन्ड।
नारी रहनी नरक की, नरक से उसका सुन्ड॥

सन्तान के मल मूत्र उठाते रहने का काम हमारे सुपुर्द है। घर में झाड़ू लगाना, लीपना पोतना, मानो हमारी जन्म घुट्टी में लिखी हुई सेवा है। आटा पीसना, चूल्हा गर्म करना, रोटी बनाकर सबको खिलाना और अन्तमें पुरुषों की थालियों का झूंठा भोजन करना हमारा धर्म नियत किया गया है। हम बड़ी पीड़ित और शोशित हैं। न केवल भारत में किन्तु विदेशों में भी स्त्रियाँ पुरुषों के हाथ से तंग हो रही हैं। एक फारसी शैर यहां तक कहता है:—

अगर नेक बूदे सर अंजाम जन।
जनाँ राम जन नाम बूदे न जन॥

वह पुरुषों को स्पष्ट शब्दों में हिदायत कर रहा है कि स्त्रियों पर रोजाना मार धाड़ पड़ती रहे तब वह काबू में रहेंगी आर्यावत में जो दशा हमारी है वह सब पर प्रकट है क्या तुम लोग पुरुषों के दुर्व्यवहार को सहन करने को तत्पर हो?"

सभा की समस्त स्त्रियों ने एक स्वर होकर कहा—"नहीं, नहीं, कभी नहीं, कदापि नहीं। अब त्रिया राज्य का प्राकट्य हुआ है। स्त्रियों को चाहिये कि इस समय को गनीमत समझें और पुरुषों के बन्धन से छुटकारा पायें।"

विमला ने कहा—"मैं प्रस्ताव पेश करती हूं कि भविष्य में स्त्रियां पुरुषों के साथ भी वही व्यवहार करें जो उन्होंने स्त्रियों के साथ किया है। लड़कियों को उन्हें आधीन रखने की शिक्षा दीजाय। यदि सम्भव हो तो पुरुषों का नामो निशान दुनियां में केवल नाम मात्र रक्खा जाय।"

नन्दी ने आपत्ति की—" बहिनो ! मंत्री के व्याख्यान के जोश में कभी न आना अन्यथा न केवल ग्रहस्थ की व्यवस्था बिगड़ जायगी बल्कि राज्य और दुनियां में विचित्र क्रान्ति पैदा होगी। स्त्री सदा से पुरुषों के आधीन रही है मगर किसी अशिष्ट और अज्ञानी कवि ने स्त्री की निन्दा की है, तो दूसरे ने उसकी प्रशंसा की है। एक कवि का कथन है :—

नारी कबहुं न निन्दिये, नारी नर की खान।
नारी से उत्पति भगत, ध्रुव प्रहलाद समान॥

मैं विमला से पूछती हूँ कि वह किस तरह पुरुषों का नाम निशान दुनियां से मिटायेगी अथवा किस प्रकार उन्हें नाम मात्र रक्खेगी ?"

विमला बोली—" जिस तरह गायों, बकरियों और भेड़ों के झुंड में सांड, बकरे और भेड़ रक्खे जाते हैं। मैं इस प्रस्ताव को भी प्रस्तुत करने वाली हूं कि विवाह केवल सामाजिक ठहराव (मुआहिदा) हो स्थायी न हो।"

नन्दी ने कहा—" छिः छिः छिः ! यह अशिष्टता की अत्यन्त गंदी शिक्षा है। प्रधान को चाहिये कि तुरन्त इस झूंठे बल को विमला के मस्तिष्क से निकाल दें।"

मैं प्रधान की हैसियत से बोल उठी—"बहिनो ! पुरुषों के अत्याचारों के सम्बन्ध में जो व्याख्यान दिया है वह अक्षरशः सत्य है। हाँ, दूसरी बात अनुचित प्रतीत होती है। उसका दूसरा प्रस्ताव विचाराधीन है। स्त्रियों की स्वतंत्रता का अभी श्री गणेश है। किसी काम में शीघ्रता करना उचित नहीं है। समय स्वयं हर ख्याल का सुधार कर देगा। हां, इतना अवश्य कह सकती हूँ कि यदि स्त्रियों के हृदय में उनके महत्व का बीज डाल दिया जाय तो कुछ ही दिनों में स्त्रियों की न केवल संख्या अधिक होजायगी किन्तु वह पुरुषों से उच्चतर होजायेंगी।

प्रकृति का यह नियम है जहाँ जिस वस्तु की माँग होती है प्रकृति स्वयं उसके पूर्ण करने का सामान पैदा कर देती है। तुम लोग पढ़ो लिखो। उन्नति करो। स्त्रियों की पहुंच और मेल मिलाप को बढ़ाओ। स्वयं तुम्हारा काम बन जायगा।"

विमला बोली—"यदि मेरे कथन में कुछ दोष और कमी है तो मैं हर्ष पूर्वक वापिस लेती हूँ और अब यह प्रस्ताव पेश करती हूँ कि भविष्य में बच्चों के पालने, कपड़े धोने, रोटी बनाने और मकान साफ सुथरे रखने का काम पुरुषों के ज़िम्मे लगाया जाय। वह घर में रहें और इन आवश्यक कामों को करें। स्त्रियाँ सेना, सभा और दरबार से सम्बन्ध रक्खें और महारानी से नियम पूर्वक प्रार्थना की जाय कि सरकारी पद सब स्त्रियों को दिये जायें। इस प्रकार पुरुष सरलता से स्त्रियों के वश में आजायेंगे और स्त्रियों का सिक्का उनके दिलों पर बैठ जायगा और यह घोषणा की जाय कि कोई स्त्री या लड़की पुरुष को प्रणाम न करे। पुरुष ही उनको प्रणाम किया करें और अपनी दाढ़ी मूंछ को उस्तरे से साफ रक्खें।

नन्दी ने कहा—"इसमें हानि नहीं। हमारी महारानी ने स्वयं ऐसी व्यवस्था की है। इस प्रस्ताव के पास करने की कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

विमला कुछ और कहने को थी कि नन्दी ने उसे रोक दिया।

नन्दी बोली—"इस समय देश खतरे में है। शत्रु आक्रमण करने की तैय्यारी कर रहा है। यह समय आवश्यक बातों के सोचने का है। मैं यह राय देती हूं कि इस सभा में जो बहिनें आयी हैं वह क्वारी और युवा लड़कियों को सैनिक कला सीखने का शौक़ दिलायें। उनके चित्त में स्त्रियों की उन्नति के विचार को बिठायें और जो मनीपुर की बहिनें यहाँ व्याही हुई हैं, वह वहाँ जाकर इस ख्याल को अपने देश की बहिनों, बेटियों

और बहुओं के हृदय में बिठायें। दबे छिपे वहाँ भी इसका प्रचार हो ताकि इस मिशन को शीघ्र उन्नति प्राप्त हो।"

सबने इसे स्वीकार किया और हर्ष के नारे लगाने के बाद सभा विसर्जन हुई।

इसके पश्चात मैंने नन्दी व दूसरे मंत्रीगणों से राय लेकर वह प्रबन्ध किये जिसको तीसरे प्रकरण में सोच चुकी हूं। दुबारा क्यों विचार करूँ ?"

पंचम प्रकरण

युद्ध

अब तो जूझे ही बने, मुड चाले घर दूर।
सिर साहब को सौंपिये, देर न कीजे सूर॥

इस समय मैं अठारह वर्ष की थी। मैं अब तक क्वारी ब्रह्मचारिणी थी। चेहरे पर तेज चमकता था। किसी की आँख मेरी सूरत पर नहीं ठहरती थी। एक तो ब्रह्मचर्य का तेज, दूसरे साधन, तीसरे जादू की विद्या ने मेरी शक्ल को चमक दमक दे रक्खी थी कि पुरुष तो सामने आते ही काँप उठते थे और स्त्रियाँ आचार्य गुरु समझ कर सम्मान से यों ही शिष्टाचार का ध्यान रखती थीं। मैंने कई लाख स्त्रियों को सेना में भर्ती किया। शिष्यों से अधिक कौन आज्ञाकारी हो सकता था। मुझे विश्वास था कि मनीपुर की स्थिति ही क्या है। वह और दस राजे यदि मिलकर आक्रमण करें तो मुझ से विजय नहीं पा सकते।

गुप्तचरों ने सूचना दी कि मनीपुर के राजा घनश्याम दास का दूत आरहा है। मैं उसके लिये पहिले से ही तैय्यार थी। वह आया। दरबार में हाजिर किया गया। नमस्कार किया।

बैठने को स्थान दिया। उसका नाम पं० मूलराज था।

मैंने पूछा—"महाराज घनश्याम दास प्रसन्न हैं? और राज महल की रानियाँ और राज कुमारियां कुशल से हैं?"

मूलराज ने कहा—"सब पर भगवती की कृपा है।"

मैं बोली—"आप कैसे पधारे हैं?"

मूलराज ने उत्तर दिया—"महाराज ने यह सन्देश भेजा है कि आप उनको अपने प्रेम का अधिकारी मानें। वह आप को सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करेंगे। अफसोस यह है कि आपके पिता जी नहीं हैं और मुझे आप ही को सीधे यह सन्देश सुनाना पड़ा। यहाँ राज में कोई पुराना मन्त्री भी उपस्थित नहीं है जिसके द्वारा यह सन्देह आपको सुनाया जाता। मनीपुर और कामरूप देश के राजाओं में ऐसे सम्बंध पीढ़ी दर पीढ़ी होते चले आये हैं और आपको भी उनका सम्मान करना चाहिये।"

मैं मुस्कराई—"पंडित जी! आपने दूत को कार्य अपने जिम्मे व्यर्थ लिया। आप ब्राह्मण हैं। आपको दरबारी शिष्टाचार से जानकारी नहीं है। यह महाराज साहब और आप दोनों की पहिली भूल है। दूसरी भूल आपने यह की कि मुझे नमस्कार किया। ब्राह्मण केवल आशीर्बाद देते हैं और स्त्री को प्रणाम नहीं करते। तीसरी गलती आप से यह हुई कि आपने मेरे दरबार के नियमों का पालन नहीं किया। चौथी गलती आपके राजा साहब की है। उनकी आयु ६० वर्ष की है, मैं केवल १८ वर्ष की हूं। अनमेल विवाह का परिणाम उनके और मेरे जीवन के लिये हानिकर सिद्ध होगा। पांचवी गलती आप से जो हुई उसको आप स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि क्वारी कन्या से इस प्रकार की आमने सामने वार्तालाप करना अत्यन्त अशिष्टता और असभ्यता का प्रमाण है।"

मूलराज लज्जित हुआ। वह समझता था कि मैं साधारण अल्हड़ स्त्री हूँगी मगर पंडित चतुर था। सोच समझ कर उत्तर दिया—"राजा की हैसियत ब्राह्मण से बढ़कर है। राज धर्मो परा धर्मः। ब्राह्मण क्या है? सन्यासी तक राजा का सम्मान करते हैं और उसकी प्रजा समझे जाते हैं। मैंने इस विषय में गलती नहीं की। दूसरी बात के बारे में मैं पहिले ही कह चुका हूं।

मैंने कहा—"मान लो कि मैंने इस सम्बन्ध को अस्वीकार किया तो परिणाम क्या होगा?"

मूलराज बोला—"सम्भव है इस अस्वीकृति से महाराज दूसरे ढंग से आपकी स्वीकृतिका प्रयत्न करें।"

मैंने अधिक बात चीत करना उचित न समझा। पंडित को वस्त्र आभूषण जवाहिरात इनाम दिये और आज्ञा दी कि उन्हें आराम से रक्खो। हजामत बनवाओ। यात्रा से आरहे हैं। दो चार दिन के बाद फिर दरबार में पेश करो। वह बिदा हुये। विश्राम ग्रह में नाई स्त्री जब उनके बाल बनाने लगी, सबसे पहिले उसने सफाई के साथ एक ओर की मूंछ मूंड़ दी। पंडित जी बिगड़े। उसने उन्हें समझाया कि इस देश का यही रिवाज है। बेचारे चुप रहे। बुरा तो माना मगर आदमी सियाना था। क्रोध प्रगट नहीं किया वर्ना स्त्री एक ही ओर की मूंछ मूंड़ कर चल देती। समझ बूझ कर चुप हो रहे। चार दिन बाद फिर उपस्थित किये गये।

मैंने कहा—"पंडितजी! मेरे मंत्री इस अनुचित बाजीगरी के विरुद्ध हैं। मैं विवश हूं।"

मूलराज बोला—"महारानी! आप बुद्धिमान हैं। इस पर विचार नहीं किया। कौन जाने महाराज इसे क्या समझें!"

मैंने कहा—"आप का काम केवल संदेश सुनाना था। यह

कार्य आप करचुके। इस से अधिक आप क्या कहेंगे? मैं सम्मान पूर्वक आप को विदा करती हूँ। राजा साहब आपके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उनको मेरा यह संदेश नम्रता के ढंग से सुना दीजिये और बस। महाराज को और कुछ कहना होगा तो दूसरे आदमी को भेजेंगे। मैं आप से बहुत प्रसन्न हूं। अब आप चाहें दूसरी हैसियत में यहाँ आ सकते हैं। मैं हर प्रकार से आप के आराम का ध्यान रक्खूंगी। लेकिन दूत की हैसियत में न आइयेगा। ब्राह्मण का दुनियां में बड़ा मान है। यह काम दूसरों का है। मैंने विदा के समय पंडित को इतना इनाम दिया कि वह खुश होकर आशीर्वाद देता हुआ चला गया और मन में मेरा समर्थक भी बन गया। जब मूंछ मुंडा पंडित मनीपुर पहुंचा और प्रशंशा के शब्दों में मेरे सद व्यवहार, देश के प्रबन्ध और सेना के सुसज्जित होने और मेरी अस्वीकृति का हाल सुनाया तो घनश्याम दास क्रोधित हुआ। सेना लेकर काम रूप देश पर चढ़ दौड़ा। मेरे गुप्तचर प्रति दिन का समाचार मुझे सुनाते थे। इस का प्रबन्ध मैंने भली प्रकार कर रक्खा था। वह समाचार आया। मैं चुप चाप प्रतीक्षा में थी। स्वयं सीमा पर पहुंच गई, विमला नाम मात्र को सेनापति थी। वास्तव में तो मैं ही सेनापति थी। नन्दी को राजधानी में छोड़ गई थी ताकि किसी प्रकार का उपद्रव न होने पावे।"

घनश्याम दास ने दूसरा राजदूत भेजा। "अब यातो घनश्याम दास के साथ विवाह स्वीकार करो अथवा युद्ध के लिये तैयार हो।"

विमला ने उसे उत्तर दिया—"यह विचार तुच्छ है। अपने राजा से कहो कि अनुचित काम से बचे अथवा पछताना पड़ेगा। हमारी रानी को यह अपमान पूर्ण संदेश बुरा लग रहा है!"

दूत लौट गया। दूसरे दिन युद्ध का डंका बजा दोनों ओर से सेनायें मैदान में आकर आमने सामने खड़ी होगईं। एक ओर अत्याचारी और निर्दयी पुरुष, दूसरी ओर निर्दोष और पुरुषों की सताई हुई स्त्रियां। मैंने संकेत किया। साहसी स्त्रियां पुरुषों पर पिल पड़ीं। तीरों की बर्षा से आकाश में अंधेरा छागया। शपा शप तलवारें चलने लगीं। पुरुषों में इतना साहस कहाँ था जो स्त्रियों का सामना कर सकते। अभी तक पुरुषों को यह ज्ञात नहीं हुआ था कि स्त्रियां शक्ति हैं और प्राणों पर खेल जाती हैं। जब किसी काम में हाथ लगाती हैं उसे अधूरा नहीं छोड़तीं। उनके सामने मृत्यु और जीवन का प्रश्न हमेशा हल हुआ रहता है। पुरुषों में पशोपेश की आदत होती है। यह आग में जल जायेंगी, पानी में डूब मरेंगी, अपना गला आप काट लेंगी, विष खाकर मर जावेंगी मगर अपनी हठ को कभी न छोड़ेंगी। यह तो स्त्री पुरुषों का युद्ध था ईश्वर को निर्णय कराना स्वीकार था कि पुरुष और स्त्रियों में कौन अधिक शक्ति शाली है। पुरुष आवेश में आकर स्त्रियों के सामने खड़े हुये थे। मूर्खों ने महान शक्ति को अबला की पदवी देरक्खी थी। विरोधी दल की बहुत सी सेना मारी गई। स्त्रियाँ नारे लगाती थीं—'भगदती की जै, शक्ति की जै, महामाया की जै, और वह इस नारे का उत्तर तक नहीं दे सकते थे। भगदड़ मचगई।"

दूसरे और तीसरे दिन फिर युद्ध हुआ। इसका भी परिणाम वही हुआ। बराबर हारते रहे। चौथे दिन विश्व-मित्र और करन ने मनीपुर की सेना को अपनी कमाण्ड में लिया। दोनों ने गेरुआ वस्त्र उतार रक्खे थे। मेरी दृष्टि पड़ गई कि यह विश्वमित्र और करन हैं। सोचा इन को जिन्दा गिरफ्तार करना चाहिये। मैं करन के सामने पर आई और

विमला को विश्वमित्र से लड़ने की हिदायत की। वह मुझे न पहिचान सके। दोनों घोड़ों पर सवार थे। तलवारें चलने लगीं। हमारी उनकी आयु में अंतर था। मैंने और विमला ने इस तरह लड़ते लड़ते इन्हें शिथिल कर दिया कि वह संभल न सके। चाहते थे कि भाग जांयें मगर बचकर कहाँ जासकते थे। मैंने करन को घायल किया। वह घोड़े से गिरा। स्त्रियों ने तुरन्त उसकी मुश्कें बाँध ली। इधर विमला ने विश्वमित्र पर सुगमता से अधिकार पालिया। फिर तो मनीपुर की सेना के पांव उखड़ गये। यह दोनों गिरफ्तार होकर बेड़ी डाल कर डेरे में रक्खे गये। अब मुझे चिन्ता हुई कि किसी प्रकार घनश्याम दास को भी जिन्दा पकड़ना चाहिये। वह बूढ़ा इस समय डेरे में था। रण क्षेत्र में नहीं आया था। मैंने हल्ला बोल दिया। स्त्रियों ने डेरे पर आक्रमण किया और उसे भी पकड़ लाईं। जब मनीपुर वालों ने यह दशा देखी—'शरण शरण चिल्लाने लगे और हथियार डाल दिये।' मैंने आज्ञा दी कि अब अधिक रक्त पात न होने पावे और मनीपुर वालों को फौजी कैदी बनाकर अपने स्थान पर लौट आई। विजय के बाजे बजने लगे। इस प्रकार युद्ध समाप्त होगया।

छटवां प्रकरण

सैनिक कैदी

ऊँचे चढ़ नीचे गिरे, सो मति मंद अभाग।
नीच होय ऊँचा चढ़े, ताका ऊँचा भाग॥

दूसरे दिन उसी जगह दरबार हुआ। मैं सिंहासन पर बैठी। विमला और अन्य मन्त्रीगण दांये बाँये थे। उन सैनिक कैदियों

के पेश करने की आज्ञा दी गई। सब के सब हथकड़ी बेड़ी पड़े हुये प्रस्तुत किये गये।

मैंने कहा—"इनके हाथ पांव की बेड़ियाँ खोल दो। किसी को अधिक अपमानित करना उचित नहीं है।"

स्त्रियों ने उन्हें उसी समय स्वतंत्र कर दिया। कैदियों को धीरज बंधा कि इनके साथ दुर्व्यवहार न किया जायगा। करन विश्वमित्र और घनश्याम तीनों नीची गर्दन किये खड़े थे।

मैंने कहा—"विश्वमित्र! यह क्या चाल थी कि तुम अपने आप को मेरा पिता कहते थे और अब लड़की से युद्ध करने आये और गिरफ्तार होगये।"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मैंने करन से कहा—"तुम तो सन्यासी बनने को थे। इस त्याग वैराग्य की शिक्षा किस से प्राप्त की?"

वह भी लज्जित होकर सिर झुकाये खड़ा रहा।

मैंने घनश्याम की ओर दृष्टि की—"महाराज! अब क्या सलाह है?"

वह भी कुछ न बोला।

मैंने तब उनसे कहा—"मैं तुम लोगों के प्राण नहीं लेना चाहती। स्त्री संसार में अत्याचार और हत्यारी बनकर नहीं आई। उसका असली भूषण दया और प्रेम है। वह सबकी हमदर्द है मगर पुरुषो! तुम बड़े निर्लज्ज हो। स्त्री की छाती का खून चूस कर पीते हो और उसे तुच्छ बुद्धि समझकर सेविका बना रखते हो अथवा अपने मन बहलाव का खिलौना समझते हो। इस समय पार्वती ने अपना रूप संभाला है। यदि तुम स्त्री की महत्ता स्वीकार करो तो भविष्य के लिये प्रण करो कि अब उससे उद्दंडता न करेंगे और सदा अपने से श्रेष्ठ और उच्च मानेंगे तो मैं तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा कर दूँगी,

अन्यथा सारी आयु युद्ध के कैदियों की हैसियत में बितानी पड़ेगी।"

घनश्याम ने कहा—"मैंने भारी गलती की। यह विश्वमित्र और करन न मेरे यहाँ आये होते और न मैं युद्ध करने को तत्पर होता। मुझे क्या मालूम था कि आप इस दुनियाँ में पार्वती की अवतार हैं। मैं स्त्री की महत्ता को स्वीकार करता हूँ और घोषणा करूँगा कि वह पुरुष का अर्द्ध मगर उच्च अंग माना जाय।"

मैं प्रसन्न हुई। "आपके हृदय में न्याय है। यद्यपि इस समय मैं आपका सारा देश जब्त कर सकती हूं। मगर मैं ऐसा न करूँगी। आपको सहर्ष आपका राज्य वापिस देती हूँ मगर शर्त यह है कि आज ही से आप प्रण करें कि अपने राज में आप स्त्रियों को उच्चपद देंगे और शिक्षित करके पुरुषों के समान मानेंगे।"

घनश्याम—"हृदय से यह शर्त स्वीकार है।"

मैंने उसी समय बिमला को आज्ञा दी—"महाराज को पोशाक दो और आदर पूर्वक डेरे में पहुँचा आओ और रक्षा की दृष्टि से अपनी सेना का एक भाग मनीपुर में रक्खो ताकि भविष्य में दृढ़ता के साथ इस देश में इस शर्त का पूरा पूरा पालन होता रहे।"

बिमला उसे पहुँचाने गई और अपनी सेना साथ करके मनीपुर की ओर वापिस कर दिया। जब तक वह नहीं आई विश्वमित्र और करन उसी तरह मेरे पास चुपचाप खड़े रहे। जब वह आगई और राजा के कूंच करने का समाचार सुना दिया, मैंने उनकी ओर ध्यान दिया।

मैंने कहा—"तुम दोनों अत्यन्त कृतघ्न सिद्ध हुये। यह अपराध दण्ड के योग्य है या नहीं?"

दोनों ने कहा—"निस्संदेह दण्ड के योग्य है। आप जितना शीघ्र प्राण दण्ड की आज्ञा दें उतना हमारे लिये अच्छा है।"

मैं बोली—"प्राण लेना मेरा काम नहीं है और न मैं तुमको जल्लाद के सुपुर्द करूँगी। तुम राजधानी में चलो और कैदी की तरह वहाँ रहो।"

दोनों ने कहा—"यह हमको पसन्द नहीं है। यदि प्राण दण्ड देना आपको स्वीकार नहीं है तो हमको काशी जाने की आज्ञा दें।"

मैं हंसी—"ताकि तुम दूसरी जगह जाकर उपद्रव करो। आजमाये को आजमाना गलती और राजनीति के विरुद्ध है।"

दोनों ही चुप रहे।

मैं उस दिन वहां ही ठहरी। सेना में खुशी के बाजे बजते रहे। मैं बिमला के साथ रण भूमि में आई। पृथ्वी रक्त से लाल हो गई थी। हजारों स्त्री पुरुषों के सिर, हाथ पाँव कटे पड़े थे। हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। ऐसे मानव जीवन का परिणाम कैसा बुरा हुआ। मनुष्य के शाशन प्रिय भाव कैसे उजड्डपन के होते हैं। मनुष्य ही शायद ऐसा जीव है जो अपनी जाति वालों को न केवल गुलाम बना रखने का अभिलाषी रहता है किन्तु ऐसे नीच विचारों के वश वह क्षणमात्र में लाखों के गले काट देता है। क्या इनमें दया नहीं है। मैंने बिमला को आज्ञा दी कि लकड़ियों के ढेर लगाकर इन लाशों को भस्म कर दिया जाय। और मैं डेरे को वापिस आई। रात को वहां ही रही। दूसरे दिन कैदियों को लेकर राजधानी आई और उन्हें आजन्म कैद रखने की आज्ञा दी।

सातवां प्रकरण

स्त्रियों की दूसरी सभा

पांच पंच मिल करे जो काजा।
हार जीत नहिं आवे लाजा ॥

शहर में उत्सव मनाये गये। विजय की खुशी में नाच रंग के जलसे किये गये। लोग हर जगह, घर द्वार, गली कूचों में जग मगाती हुई पताकायें फिराने लगे। किस को ख्याल था कि एक अनुभवहीन और छोटी आयु की अल्लहड़ रानी को मनीपुर जैसे शक्तिशाली राजा पर विजय मिलेगी। वास्तव में यह जीत स्त्रियों की पुरुषों पर थी। इतिहास के पन्ने को पलटना था। पहिले भी किस्सा कहानियों में त्रिया राज्य का वर्णन मैंने सुन रक्खा था मगर पुरुषों ने अपनी दुष्ट बुद्धि से ऐसे ऐसे बन्धन और नई नई बातें कर दी थी कि स्त्रियों को सदा के लिये निरर्थक बना दिया था मगर काल चक्र के पहिये सदा घूमते रहते हैं। कभी प्रकृति को राज करना पड़ता है। यह शायद सदैव से ऐसा ही हुआ करता है।"

विमला ने दूसरी सभा करने का प्रस्ताव रक्खा। मैं ने भी इसे आवश्यक समझा ताकि स्त्रियों की शक्ति में पूर्ण रूपेण सुधार हो जाय।"

मैंने यह भी कहा—"इस बार शहर की सब स्त्रियां बुलाई जाँय और दो एक बड़ी बूढ़ी भी बुलाई जांय। यह देखना है कि स्त्रियों के सत्व के विषय में वह क्या कहती हैं। उनके कथन का भी लाभ उठाना चाहिये।"

बिमला बोली—"यह बहुत अच्छी राय है।" दूसरे दिन सभा की गई। हजारों की संख्या में स्त्रियां सम्मिलित हुईं। पुरुष केवल दो थे। यह शहर के प्रसिद्धि पंडित भोजदत्त और

ब्रह्मदत्त थे। सभापति मैं ही हुई।"

सबसे पहले मैंने संक्षिप्त व्याख्यान दिया—"बहिनो और भाइयो! भगवती का लाख लाख धन्यवाद है कि कामरूप को मनीपुर पर विजय प्राप्त हुई है। इस विजय ने सिद्ध कर दिया कि शिक्षा के प्रताप से स्त्रियाँ पुरुषों पर विजयी होती हैं। भविष्य में स्त्रियों को अधिक काम करने का अवसर देना चाहिये ताकि राज्य को अधिक दृढ़ता प्राप्त हो। इस सभा में पं० भोजदत्त और ब्रह्मदत्त भी आये हैं वे तुम को बतायेंगे कि संसार में पुरुष उच्चतर हैं या स्त्री।"

भोजदत्त जी उठकर खड़े हुये—"महारानी, बहिनो और भाइयो! महारानी ने जो कुछ कहा है विचारने योग्य है। मैं स्वयं क्या कहूँ शास्त्र कहते हैं। पुरुष सत और स्त्री असत है। एक असल है दूसरी नकल है। एक स्वस्वरूप है दूसरी गुण है। जैसे चिराग के नीचे अन्धेरा रहता है वैसे ही स्त्री पुरुष के आधीन है। स्त्रियां पुरुषों से सदैव उच्च नहीं रह सकती। यह महारानी की योग्यता थी जिसने यह चमत्कार दिखाया।"

विमला ने कहा—"जिस को पंडित सत कहते हैं वह असल में प्रकृति ही है। उसके दो रूप हैं सत और असत। प्रकृति तो सत है। पुरुष असत है। शास्त्रों में पुरुषों ने वरवश गलत अर्थ किये हैं। यह अर्थ कभी मानये योग्य नहीं हैं। मैं इसे परमार्थ और व्यवहार से सिद्ध कर सकती हूँ। मैं पंडित जी से एक बात पूछती हूँ। शास्त्र स्त्री को शक्ति कहते हैं। शक्ति बलवान है या शक्तिमान? बिना स्त्री के पुरुष का कहीं ठौर ठिकाना नहीं रहता। विवाहित पुरुष की नकेल तो सदैव स्त्री के हाथ में रहती है मगर जो रंडुवा हो जाते हैं उनका जीवन बिल्कुल निकम्मा बन जाता है। रांड स्त्री की गुजर तो दुनियाँ

को तो मैंने तेरे ही लिये बनाया था। पुरुष उसको घर ले आया। वह आई। फिर वही धमा चौकड़ी, वही उधम, वही नाज नखरे, फिर शुरू हो गये। पुरुष के होश हवास का कोसों पता नहीं! वह भाग खड़ा हुआ। घबराहट में वह फिर भगवान के पास आकर रोने लगा।"

विमला बोली—"कहानी किस्सा कोई प्रमाण नहीं है। कहानी तो मैं भी गढ़ सकती हूँ। मेरी भी कथा सुनो जो शास्त्रानुकूल है—

सबसे पहिले आदि शक्ति सुप्त अवस्था में थी। वह आदि माया के रूप में प्रकट हुई, ज्योतिर्मयीदेवी! उसे जगत के रचने की इच्छा हुई। चारों ओर दृष्टि डाली और सोचा। तब उसी के संकल्प से चतुर्मुखी ब्रह्मा उत्पन्न हुए। महामाया ने आज्ञा दी कि शक्ति से बल लेकर सृष्टि की रचना कर।"

ब्रह्मा बोले—"शक्ति तो माता है। मुझ से यह काम न हो सकेगा।" आज्ञा भग क्षमा योग्य नहीं थी। भगवती ने क्रोध की दृष्टि से देखा। ब्रह्मा भस्म हो गये। तब देवी ने विष्णु को बनाया इनको भी वही आज्ञा दी। उन्होंने भी नहीं मानी। वह भी भस्म हो गये। अन्त में आदि माया ने शिव को उत्पन्न करके जगत के रचने की आज्ञा दी। यह दोनों भाइयों से बुद्धिमान थे। भस्म के ढेर को देखकर पूछा कि यह क्या है? उत्तर दिया गया कि यह तेरे दो भाई थे जो आज्ञा भंग के कारण भस्म कर दिये गये।

यदि तू भी मेरी आज्ञा न मानेगा तो तेरी भी यही दशा होगी। शिव ने कहा—'माता! जो पहिले पैदा हो वही पैदा करने वाला हो सकता है। बीच वाले के जिम्मे संभाल का काम होता है। मैं सबसे अन्त में आया, इसलिये संहार का काम मेरे सुपुर्द कर। ब्रह्मा और विष्णु ने तेरे शिष्टाचार के कारण ऐसा किया है। तू अपनी शक्ति से विशेष स्त्रियों को उत्पन्न

कर दे जिसे देख वह मोहित हो जाय तब यह काम चलेगा।"

देवी ने स्वीकार किया और अपनी संकल्प शक्ति से गायत्री, लक्ष्मी और उमा को उत्पन्न किया। उसने दोनों ढेरों पर दृष्टि डाली। ब्रह्मा और विष्णु जीवित हो गये और गायत्री और लक्ष्मी को देखकर इतने प्रसन्न हुये कि होश हवास खो बैठे। देवी ने फिर उन्हें वही आज्ञा दी और वह राजी हो गये। तब से सृष्टि क्रम चालू हुआ। अब मुझे पंडितजी बतायें कि यह शास्त्र की बात है या नहीं। यदि है तो आदि शक्ति से बढ़कर कौन हो सकता है।"

भोजदत्त चकित हो गये। उत्तर न बन आया।

आठवां प्रकरण

सभा (क्रमशः)

बात बात में बात है, बात बात में बात।
ज्यों केले के पात में, पात पात में पात॥

तब ब्रह्मदत्त उठे – "महारानी! मुझे भी एक कथा याद आई है। उसे भी सुन लीजिये जिससे स्त्री की असलियत का पता लगे।"

एक समय था जब सृष्टि में न पुरुष थे न स्त्री। दुनियाँ थी मगर वह पुरुष स्त्री की दुनियाँ नहीं थी। हममें कोई पुरुष है कोई स्त्री और प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी दुनियाँ में समझ रखता है। उसने दुनियां बनाई, देखा, सोचा समझा, मगर इस नई पैदा की हुई दुनियाँ में इसको कुछ कमी दृष्टिगोचर हुई। स्वयं सन्तुष्ट नहीं था क्योंकि दुनियां जो उसने बनाई अंधी थी। अंधे में आकर्षण शक्ति नहीं होती। वह न तो किसी का ध्यान अपनी ओर खेंच सकता है और न किसी को

अपनी तवज्जह दे सकता है। तुम स्वयं देखो। कुल शरीर बना है मगर क्या? व्यर्थ। जब तक आँख न हों कुछ नहीं होसकता। स्त्रियाँ साधारण तया कहा करती हैं--"किस पर करूँ सिंगार पुरुष मेरा आँधरा।" आंखें हों तो औरों को भी देखे और अपने को भी दिखाये। यह आंख बड़ी चीज है। एक अंधा पुकारता है—'आंख वालो! आंखें बड़ी नियामत हैं।' यह अक्षरसः सत्य है। ईश्वर ने दुनियाँ तो बनाई मगर आंख वाले जीव नहीं बनाये। जो उसको देखता और उसकी सुन्दरता की सराहना करता। वह देर तक सोचता रहा। सोचते सोचते उसने आदमी को बनाया। चूँकि उसने सोच विचार की दशा में आदमी को बनाया था इस लिये इसका नाम मनष अर्थात् मन वाला, सोचने वाला और विचार करने वाला रक्खा। आदमी वह है जो सोच विचार के गुण रखता हो। जो इससे रहित है वह चाहे कुछ हो मनुष्य नहीं है। मनुष्य पैदा हुआ। सोच विचार करने वाला, बुद्धि वाला। उसने आंख खोली। दुनियाँ को देखा। प्रसन्न हुआ क्योंकि दुनियां बड़ी सुन्दर थी। सुन्दरता विचित्र वस्तु होती है। यह जादू है। मन्त्र जन्त्र है। यह सबके मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। यही दशा मनुष्य की हुई। जिधर उसकी दृष्टि गई, उसी ओर आश्चर्य, और रूप का दृश्य दिखाई दिया। दुनियां का चित्र उसकी दृष्टि में गढ़ गया। जिस प्रकार दर्पण हर एक वस्तु के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है उसी तरह मनुष्य का हृदय दर्पण है। यदि वह स्वच्छ है तो उसमें प्रत्येक वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है और यदि वह धुंधला है तो फिर क्या, कुछ भी नहीं। आदमी जिस वस्तु को देखता था उसकी ओर आकर्षित हो जाता था। कभी वह फूलों की सुगन्धि का प्रेमी होता था तो कभी सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति से चकित रहता था।

वृक्ष के एक एक पत्ते उसको लुभाते थे। नदी की एक एक बूँद में रूप लावण्य का सागर लहराते हुये दिखाई देता था। वायु के झोंके, बादलों की गरज, बिजली की कड़क, गगन चुम्बी पर्वतों के दृश्य, बन उपबन और मैदान के दृश्य सब उसके मनोरंजन का कारण थे। पशु जो चरने वालों, उड़ने वालों और फाड़खाने वालों के रूप में चरते, उड़ते और दौड़ते दृष्टि गोचर होते थे उसको प्रसन्नता देते थे। वह क्या क्या देखता।

नेत्र मिले थे देखने के लिये, देखा, देखा, देखा किया और वह न कैसे देखता। जिसको आंखें हैं वह देखने के लिये विवश है। उसको देखने से रोक कौन सकता है। किसमें यह शक्ति है ? किसी में भी नहीं। यह अकेला घूमता फिरता हुआ गंगा किनारे पहुंचा। जब गंगा तट पर आया प्यासा था। पानी पीने को झुका। ईश्वर की कारीगरी तो देखो। इस गंगा के निर्मल जल में उसने अपना प्रतिबिम्ब देखा। उसको सबसे सुन्दर पाकर उसे ध्यान से देखने लगा। अहा! प्रकृति में यह दृश्य आश्चर्य जनक और चिन्ता कर्षक है। अब तक मनुष्य ने अपना रूप नहीं देखा था। वह और सबको तो देखता रहा और उनके देखने से खुश भी था मगर अभागा अपने आपको कैसे देखता। दर्पण न हो तो कोई रूप कैसे देखे। यह गंगा और गंगाजल उसको दर्पण का काम दे गया। वह आश्चर्य के ढंग में अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर चिल्ला उठा। यह प्राणी सबसे अधिक सुन्दर है। क्या अच्छा होता यदि यह मुझको मिल जाता। मैं इससे वार्तालाप करता। इससे प्रेम करता। यह मुझ जैसा है। दो हाथ, दो पाँव, वैसा ही शरीर वैसे ही अंग और वह इस छाया के पीछे दौड़ पड़ा। उसको पकड़ना चाहा मगर छाया किसके हाथ आया है। माना कि वह उसका अपना ही छाया था मगर अपनी छाया को भी कौन पकड़

सकता है और किसने आज तक पकड़ा है। वह देर तक अपनी छाया की खोज, अपनी छाया के प्राप्त करने और अपने हाथ में लाने का प्रयत्न करता रहा। ऐसा होता कि अज्ञान न होता, ऐसा होता कि वह भ्रम का शिकार न बना होता, ऐसा होता कि कोई उसके कान में कह देता कि यह तू आप है, तो वह धोखा न खाता। मगर कहता कौन! इस समय कहने वाला कौन था! जब प्रयत्न करते करते वह थक गया, गङ्गा के किनारे बैठ गया। चित्तमें उदासी छागई। मन घबरा गया। पहिली प्रसन्नतायें धूमिल होगईं। "छाया का पकड़ना, नापना या मुट्ठी में हवा बांधना क्या!" जो लोग छाया के पीछे दौड़ते हैं सबका यही हाल होता है। दुखी होते हैं चिल्लाते हैं शोर मचाते हैं और अन्त में मन मारकर पड़ रहते हैं। ईश्वर ने इसकी दशा देखी। सोचा विचारा। मुझको इस समय इसका ज्ञान नहीं। मैं नहीं समझता था कि मेरी कला की छाया इतनी चित्ताकर्षक होकर मनुष्य को इतनी व्याकुल करेगी और वह इस प्रकार अपने ही रूप के जालरूपी फंदे में फंस कर इतना हैरान होगा। देखो! यह आदमी अपने ऊपर आप आसक्त। सुन्दरता इसमें थी। इस ओर तो दृष्टि नहीं गई। अपनी सुन्दरता की छाया को देख कर उन्मत्त होगया। अब क्या करूँ! इसके पागलपन के रोग का इलाज कैसे हो? "आशिक है जाते इंसान अपनी सिफात पर, हैरान हुआ है नादान एक एक बात पर।" यह रूप, आकर्षण, यह हाव भाव इसके हैं। फिर भी इसके रोग का इलाज करूँगा। मानव दुनियाँ का केन्द्र है और यह एक और अकेला केन्द्र है। मैं दो केन्द्र तो नहीं बना सकता अन्यथा प्रकृति की व्यवस्था बिगड़ जायगी। न मैं अपनी करीगरी में वृद्धि ही कर सकता हूं। मनुष्य स्वयं पूर्ण है। प्रकृति पूर्ण है। पूर्ण वस्तु में अब वृद्धि कैसी। जो होना था वह हो गया।

अब अधिक प्राणी बनाना व्यर्थ है मगर कुछ तो फिर भी कर देना चाहिये ताकि इस बावले का मन ठहर जाय। मनुष्य असल है। अब दूसरा असल क्या बनाया जाय मगर कठिनता यह है कि नकल की भी अब सम्भावना नहीं रही। जो बनाना था, मैंने अपने ढंग पर सब कुछ बना दिया। यदि एक और असल वस्तु बना देता हूँ तो विघ्न होगा। एक से जब दो हुये लुत्फ यकताई नहीं। ईश्वर बहुत देर तक सोचता रहा। अन्त में उसने गंगा तट पर बैठे हुये आदमी के प्रतिबिम्ब को इकट्ठा किया जो जल के ऊपर दिखाई दे रहा था। उससे उसने एक स्त्री बनाई जो वास्तव में नकल है। न प्रकाश है न छाया है। न सच है न झूठ है। न निजस्वरूप है न गुण है किन्तु दोनों का माजून है, है भी और नहीं भी। उसमें असलियत भी है और असलियत नहीं भी है। वह है नहीं मगर भासती है। आश्चर्य! आश्चर्य!! आश्चर्य!!! कोई इस स्त्री को समझे भी तो कैसे समझे! वह समझ में नहीं आसकती। कोई वस्तु हो तो समझ में आवे। और न भी हो तो उस का ख्याल मन से दूर रहे। अचंभा तो यह है कि वह है भी और नहीं भी है। अभिप्राय यह कि ईश्वर ने इस को इस तरह बनाया। वह बनगई। चूंकि प्रसन्न चित्त मनुष्य का प्रतिबिम्ब था, उत्पन्न होते ही मुस्करा उठी। चूंकि पानी की सतह से इकट्ठा करके प्रतिबिम्ब बनाया गया था, उसी समय रोने लगी। राम राम! द्वन्द का खेल। न यह न वह। उसको रोते हुये देख कर भगवान ने पूछा—"भाग्यवान! तू रोती क्यों है? इस रोने से तुझे लाभ क्या है?"

वह फिर आंसू पोंछ कर मुस्कराई और दुपट्टे का घूंघट मुंह पर डाल कर बोली—"मैं इस लिये रोती हूँ कि मैं हूँ

करें। दान लेने वाला निर्धन होता है। यह विवाह है दान नहीं है। दूसरा प्रस्ताव यह कि प्रत्येक व्यक्ति को शक्ति मार्ग ग्रहण करने का आदेश दिया जाय। शक्ति ही सत वस्तु है। तीसरा प्रस्ताव यह है कि ऐसे पंडितों और पंडितानियों को तैयार किया जाय जो शक्ति मार्ग के ग्रन्थों की अधिक संख्या में रचना करें और देश में उनका रिवाज हो। चौथा प्रस्ताव यह है कि लड़का हो या लड़की किसी व्यक्ति को पुरुष के नाम से न कहा जाय, किन्तु जन्म लेते ही वह एक दो मास बाद राज के सुपुर्द किया जाय और राज की ही सन्तान मानी जाय। पांचवां प्रस्ताव यह है कि राज में शहर शहर और गाँव गांव में इस प्रकार के शिशु पालन-ग्रह नियत हों जहाँ यह सब बच्चे रक्खे जांय और पुरुषों को चूंकि सरकारी नौकरी न मिलने की शिकायत है, वह अधिकतर इसी काम में लगाये जाँय और बच्चों के पालन के जिम्मेदार बनें। छटवाँ प्रस्ताव यह है कि लड़की ही माता पिता की सम्पति की जायज वारिस मानी जाय। लड़के को यह अधिकार न रहे। सातवाँ प्रस्ताव यह है कि लड़कियां सास ससुर के घर जाकर सताई जाती हैं, भविष्य में ऐसा कानून चालू हो कि लड़के ही अपने सास ससुर के घर जाकर रहें। आठवां प्रस्ताव यह है कि चाहे जिस जाति की स्त्री हो जिसे पसन्द करे उसे अपना पति बनाये और जब चाहे उसे त्याग दे। पुरुष को भी ऐसा अधिकार प्राप्त हो। कोई किसी का जीवन भर गुलाम न हो। नवाँ प्रस्ताव यह है कि स्त्रियों के बदले पुरुषों को जेवर पहना पहना कर दुर्बल किया जाय ताकि वह स्त्रियों की तरह दुर्बल रहें और कभी सामना न करें। दसवाँ प्रस्ताव यह है कि जो स्त्री जिस जाति के पुरुष को चाहे, उससे विवाह करले। जाति पाँत का

कोई बन्धन न रक्खा जावे। ग्यारहवाँ प्रस्ताव यह है....."

मैं हंसा—"विमला ! तुम्हारा मस्तिष्क प्रस्तावों की मशीन है। किसी को सोचने का भी समय दोगी या प्रस्ताव ही पेश करती जाओगी।"

"नन्दी ! कहो तुम इनका समर्थन करती हो या नहीं ?"

नन्दी बोली—"हजारों प्रस्ताव पेश करके पास करना एक बात है और किसी सुधार को क्रियात्मक रूप देना दूसरी बात है। मैं समर्थन के बदले इन सबका बिल्कुल विरोध करती हूँ। कोई काम बिना सोचे समझे करना मूर्खता है। मैं इस बात को मानती हूं कि प्रारम्भ में सामाजिक नियमों का यह रूप नहीं था जो इस समय है, किन्तु स्त्री और पुरुष पशुओं की भांति रहते थे। जंगली जातियों की अब तक यही दशा है। ऋषियों ने सहस्रों वर्षों के अनुभव के पश्चात इनकी नींव डाली और सामाजिक शान्ति स्थापित करने की अच्छे ढंग से व्यवस्था हुई। समय के परिवर्तन से उनका रूप कुछ का कुछ हो गया। लेकिन वर्तमान समय ऐसा नहीं है कि इन नियमों की नींव को एक बारगी ढा दिया जाय। माँ को सन्तान की ममता होती है। इसे सब जानते हैं। समस्त बच्चे किस प्रकार सरकारी शिशु-पालन ग्रहों में रक्खे जा सकते हैं ! यह असम्भव है। स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से पति का प्रेम होता है। वह प्रायः इस प्रेम में प्राण त्याग देती हैं और वियोग नहीं सह सकती। उनके इस स्वभाव का सम्मान न करना बड़ी गलती होगी।"

विमला ने उत्तर दिया—"जिसे तुम प्रेम कहती हो वह गलत अर्थ है। यह मनुष्य की पशु वृति का परस्पर क्षणिक आकर्षण का भाव है जो अधिक टिकाऊ नहीं होता। पशु और पक्षियों को देखो कि बच्चे जहाँ अपना भोजन प्राप्त करने के योग्य हुये कि माँ बाप को उनसे कोई प्रयोजन नहीं रहता।

यह केवल शिक्षा है जो प्रेम भाव को शक्ति देती है और विरोधी शिक्षा उसका रुझान बदल देगी।"

नन्दी बोली—"किसी अंश तक मैं इसे सच मानती हूँ। लेकिन क्या फाख्ता (पक्षी) का जोड़ा सारी उम्र एक दूसरे का प्रेमी नहीं बना रहता। प्राकृतिक व्यवस्था बड़ा विस्तृत कार्यालय है जिसमें ख्याल के हर पहलू के विषय मौजूद हैं।"

मैंने कहा—"नन्दी! समस्त प्रस्तावों का विरोध न करो अन्यथा इस सभा के करने का परिणाम क्या होगा?"

नन्दी ने उत्तर दिया—"जब तक कि प्रस्ताव पर अच्छी तरह बहस न की जाय तब तक उसे कानून न बनाना चाहिये अन्यथा देश में भारी परिवर्तन हो जायगा और कौन जाने वह अमल में भी आये या नहीं।"

मैंने पूछा—"फिर क्या राय है?"

नन्दी बोली—"कुछ प्रस्तावों को दूसरे देशों में परीक्षा के लिये पेश करना चाहिये। यदि वह वहां लाभदायक सिद्ध हों तो फिर अपने देश में इन्हें नियम बनाना चाहिये वर्ना नहीं।"

विमला बोली—"जो वस्तु जिस जगह उत्पन्न होती है वहां ही वह फूलती फलती है।"

नन्दी मुस्कराई—"नदी पर्वत से निकलती है। वहां वह उन्नत नहीं होती। मैदान और नगरों के निकट उसे मान और महत्व प्राप्त होता है। कन्या अपने मा बाप के यहाँ नहीं फूलती फलती। इसे सब जानते हैं।"

मैं ने कहा—"किस प्रस्ताव की परीक्षा कहां कराना चाहती हो?"

नन्दी ने उत्तर दिया—"पूर्व में हमारा पड़ौसी ब्रह्मा देश है। वहाँ की स्त्रियां अधिक स्वतंत्रता प्रिय हैं। चूंकि काम रूप राज का उससे मित्र भाव है, अतः वहाँ दूत भेजकर राजा से

पूछिये कि क्या शादी विवाह में जाति का भेद भाव रखना ठीक है या नहीं और वह कहां तक उसे रिवाज दे सक्ता है। दूसरा देश दक्षिण में मलाबार है। वहाँ सेपूछ कर आइये कि लड़के को सास ससुर के घर जा कर रहना चाहिये या लड़की को ? और पुत्र संतान को माँ बाप की सम्पति का उत्तराधिकारी होना चाहिये या पुत्रियों को ? यदि एक स्त्री दस पांच पति की एक ही समय में इच्छा करे तो इसकी परीक्षा पहाड़ी देशों में करना चाहिये। आसाम अभी इसके लिये तत्पर नहीं है।"

मैं ने पूछा—"मैं इसे कर देखूंगी। तुम यहाँ कोई सुधार होने दोगी या नहीं ?"

नन्दी ने उत्तर दिया—"इस समय तक जो सुधार आपने किये हैं वह पर्याप्त हैं। प्रत्येक व्यक्ति हर समय हर हालत में काम नहीं कर सक्ता ! आपको केवल स्त्रियों की शिक्षा की बढ़ोतरी करनी चाहिए। रहा शक्ति धर्म की पृथा के विषय में, वह देश में प्रचलित है वर्ना मैं राय देती कि उसकी परीक्षा पंजाब में की जाय। पंजाबी सदैव धार्मिक विचारों को शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त आपकी गुरू 'लोना' वहां गई हैं वह कभी भूल में नहीं रह सक्ती। पंजाब में स्वयं शक्ति धर्म के प्रचार का प्रबन्ध होगा।"

मैं चुप हो गई। उस दिन सभा का कोई प्रस्ताव नन्दी के हठ के कारण पास नहीं होने पाया। अधिक राय उसी की ओर थीं। मै ने बिमला को अधिक बहस नहीं करने दी। अधिक मत प्रजातंत्र के नियम का मूल है। भोजदत्त और ब्रह्मदत्त हसे। उनका यह व्यवहार मुझे कब अच्छा लगता था मगर मैं चुप ही। अन्त में सभा बिसर्जन हुई और पेश किये गये प्रस्तावों को दूसरी बार के लिए स्थिगत करना पड़ा।

तीसरा भाग समाप्त।

निकट न जा सकी। देखकर भय लगता है।"

मैंने प्रश्न किया—"उसकी चाल ढाल और रूप रंग कैसा है?"

लक्ष्मणा ने कहा—"आदमी क्या है, चाँद का टुकड़ा है। तेजोमय मस्तिष्क, प्रसन्न मुख, सुडौल हाथ पांव, गौरवर्ण, चमकते हुये नेत्र, तिरछी भौंयें, सिर से पांव तक तेज के सांचे में ढला है।"

मैं मुस्कराई—"कहीं तू उस पर मोहित तो नहीं हो गई जो ऐसी बहकी बहकी बातें कर रही है।"

लक्ष्मणा ने कहा—"आप इस प्रकार न कहो। मैं तो···।"

मैं बोली—"उसका कुल समाचार सुनाओ।"

लक्ष्मणा ने उत्तर दिया—"आँखों ने देखा अवश्य है, मगर वह जिभ्या नहीं रखतीं। कैसे कहें! आँख और जुबान में एक अंगुल का अन्तर है।"

मैं खिलखिला कर हंसी—"प्रतीत होता है कि उसका जादू तुझ पर चल गया।"

लक्ष्मणा ने कहा—"यह गलत विचार है। आकाश को पृथ्वी से क्या सम्बन्ध! सूर्य को कण के साथ क्या सम्बन्ध।"

मैं बोली—"आज तो तू कवियों की तरह वार्तालप कर रही है।"

लक्ष्मणा ने उत्तर दिया—"मैंने तो पहिले यह समझा था कि वह कोई देवता है जो पृथ्वी के बाग की सैर के लिये आकाश से उतरा है। मगर शास्त्र कहते हैं कि देवताओं के शरीर की छाया नहीं होती। उसकी छाया धूप में मौजूद थी। वह देवता नहीं है मनुष्य है।"

मैं हंसी—"आश्चर्य की बात है। क्या कहूं क्या न कहूँ। वह कब और किस समय वहां आया?"

लक्ष्मणा ने उत्तर दिया—"इसकी जानकारी किसी को

भी नहीं है। बाग की मालिन अफसर ने मुझे कहा कि यह प्रातः काल से यहाँ इसी प्रकार मौजूद है।"

मैंने प्रश्न किया—" वह धूप में बैठा है अथवा किसी वृक्ष की छाया में है ?"

लक्ष्मणा बोली—" धूप में।"

मैंने क्रोध में आकर कहा—"आज मैं मालिनों को कड़ा दंड दूंगी कि पुरुषों को शाही बाग में आने क्यों दिया और पुलिस से भी पूछ ताछ करूंगी।"

लक्ष्मणा बोली—" आप के जो मन में आवे वह कीजिये मगर यह कोई साधारण व्यक्ति प्रतीत नहीं होता। मैं क्या कहूँ स्वयं चकित हूं। आप एक बार देखें तो कहें।"

मैंने उसी समय पुलिस के अफसर को बुलाया। उस से कहा—"वह क्या अंधेर है कि पुरुष शहर और बाग में चले आते हैं और कोई रोकता तक नहीं। शाही बाग में पुरुष आ गये हैं और तुम बेसुध हो।"

वह चली गई और थोड़ी देर में आकर बोली—"मैं योगी से मिली। वह बड़ा ज्ञानवान और समझदार व्यक्ति प्रतीत होता है। मुख देदीप्यमान है। आखें नहीं ठहरतीं। वह कल सायंकाल वहाँ आया। दाढ़ी मूंछ न होने से किसी ने रोक थाम नहीं की। इसी हैसियत से वह बाग में भी प्रवेश कर गया। इस में किसी का दोष नहीं है। आज जाकर पता लगा कि वह पुरुष है। गुरु चेला दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं और देखने योग्य है। ऐसे सुन्दर मनुष्य इस देश में पहिले मैंने तो कम से कम नहीं देखे थे।"

मुझे भी इसके देखने की इच्छा हुई। नन्दी और विमला को बुलाकर सलाह की। विमला ने राय दी कि उसे दरबार में बुलाना चाहिये मगर नन्दी जान बूझ कर विमला की हर

बात का विरोध किया करती थी। इस की यह राय हुई कि सम्भव है योगी को दरबार में आने से घृणा हो। पहिले बाग की सैर के बहाने चलिये। उसे देख लीजिये। फिर कोई बात सोची विचारी जायगी। जो यों ही बुलाया गया और वह न आया तो इस में एक प्रकार का अपमान होगा। नन्दी सदैव अच्छी सलाह देती थी। अन्त में उसी की बात मानी गई।

दूसरा प्रकरण

मत्स्येन्द्रनाथ

जोगी आया नगर में, प्रेम की राह दिखाने।
वह तो सब को प्रेम सिखावे, जो कोई उसको माने॥

मैं बिमला, नन्दी, लक्ष्मण और पुलिस अफसर को साथ लिये सायंकाल को बाग में पहुँची। देर तक क्यारियों की सैर करती रही। फिर योगी की ओर फिरी। इस समय वह ध्यान में था और चेला चुप चाप एक ही जगह बैठा हुआ था। चन्दा (पुलिस अफसर का नाम) ने उसे मेरे पास बुलाया। वह निःसंकोच चला आया। मैंने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। वह हम सब को देख कर खड़ा हुआ मुस्कराता रहा।

मैंने पूछा—"तुम कौन हो और यह साधू कौन है? यहाँ कैसे आना हुआ?"

चेला ने उत्तर दिया—"मैं चेला हूँ। यह गुरू हैं। साधु की मौज! रमता जोगी बहता पानी, जिधर का ध्यान आया उसी ओर चल दिये। बन्धन का जीवन नहीं है कि एक जगह पशुओं की भाँति खूंटे से बंधे रहे। 'दरवेश रवाँ तो बहतर। आबे दरिया

बहे तो बहतार।' साधु से यह कैसा सवाल कि क्यों आये और कैसे आये। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु की भिन्न भिन्न स्थिति है। वायु चलती है। अग्नि जलती है। जल बहता है। मिट्टी जहां की तहां पड़ी रहती है और बिना किसी एक की गति के हटती नहीं। गृहस्थी मिट्टी के पुतले हैं। घरबार नहीं छोड़ सकते। साधु वायु और अग्नि के जीव हैं। चलते और चमकते रहते हैं। पहिले आकाश वायु अग्नि और जल और पृथ्वी से पूछो कि वह क्यों ऐसा करते हैं। फिर साधु से प्रश्न करो।"

चन्दा ने उस से कहा--"यह इस देश की महारानी हैं।"

चेला बोला—" महारानी आप की जय हो।"

मैं हंसी—"तुमने यह नहीं बताया कि कहाँ से आये और क्या नाम है ?"

चेला ने कहा--" क्या नाम से है फ़कीर को काम।
क्या लीजिये छोड़े गाँव का नाम।।"

मैंने कहा— "जब तत्वओं के जगत में तत्वओं तक का नाम रूप है तो चाहे फकीर हो या अमीर, नाम रूप के बन्धन से स्वतंत्र कैसे हो सकता है।"

चेला हंसा--" बहुत अच्छा ! मैंने शास्त्रों में पढ़ा कि राजा जनक और अजात शत्रु आदि राजा होकर ऋषियों को ज्ञान सिखाया करते थे। ज्ञान क्षत्रियों ही का उत्तराधिकार है मगर आज जैसी रानी की जुबान से ज्ञान की बातें सुन रहा हूँ। आश्चर्य की बात है।"

मैं मुस्कराई—" क्या आप स्त्रियों को अज्ञानी ही समझते हो और उन्हें विचार बुद्धि और विवेक से रहित मानते हो ?"

चेले ने निर्भयता के स्वर में कहा —" महारानी ! आप का विचार असत्य है। वेदान्त की प्रथम आचार्य लोप मुद्रा स्त्री ही थी। जनक की दूसरी स्त्री ब्रह्मचारिणी ने भरी सभा में

ज्ञान उपदेश किया था। मनुष्य सबसे पहिले अपनी माता ही से शिक्षा पाते हैं। मैं स्त्रियों को अज्ञानी नहीं समझता और न वह निःबुद्धि हो सकती हैं। यदि कोई पुरुष ऐसा कहता है तो वह मूर्ख और अज्ञानी है। फिर हम तो शिवजी के उपासक हैं। शक्ति की पूजा करते हैं। स्त्रियों को अज्ञानी कह कैसे सकते हैं। यदि कहें भी तो आप का अस्तित्व स्वयं उसका विरोध करेगा। आप ने त्रिया राज स्थापित करके स्त्रियों की योग्यता और बुद्धिमता का प्रमाण दिया है।"

मैं मन में बड़ी प्रसन्न हुई।

मैंने कहा—" आप न्याय प्रिय हैं। संसार के सब पुरुष ऐसा नहीं समझते।"

चेले ने उत्तर दिया—'क्या काशी में पापी नहीं रहते! यह पुरुष पापी नहीं। इन को असलियत का ज्ञान नहीं है। अज्ञानियों की गलती पर ज्ञानी ध्यान नहीं देते।"

मैं हंसी--"अब तो अपने नाम व पते से परिचित कीजिये।"

चेला ने कहा—" मेरे गुरु का नाम मत्स्येन्द्रनाथ ऋषि है मेरा नाम बेंगनाथ है। उज्जैन नामी विक्रमादित्य की नगरी में छिप्रा नदी के किनारे महाकाल का मंदिर है। उसी मंदिर से मिला हुआ नाथों का मठ हैं जिस के महंत जालंधर योगी है। वह आज कल गौड़ देश में मीना वती रानी को चिताने आये हैं जिस का लड़का गोपी चन्द राजाओं में प्रसिद्धि है। गुरुजी जालंधर जी के दर्शनाथ आये थे। त्रिया राज का हाल सुना। आसाम आगये। अब आप हमारे सम्बन्ध में सब कुछ जान गईं।"

मैंने कहा—"आप का आना हम सब के लिये धन्य हो! आप के चरणों से यह देश पवित्र होगया। क्या मुझे आप के

गुरु का दर्शन इस समय हो सकता है ?"

चेला बोला—"गुरुजी इस समय समाधि में हैं। आप लोग उनके पास बैठ जाइये। थोड़ी देर में समाधि से उत्थान होगा। तब आप उनका दर्शन कर सकोगी।"

मैं अपने साथियों सहित शिष्ट रूप से बैठ गई। साधु वास्तव में अत्यन्त सुन्दर था। मैं उसी समय लाघव की भूल गई। मैंने उसी समय उस पर दृष्टि ठहराई और संकल्प की धार से उसे छेड़ने लगी। यह क्रिया प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है और थोड़ी देर में उसे अनुभव होजायगा कि संकल्प की गति मन और मस्तिष्क को क्षण मात्र में गति मान कर सकती है। मेरे इस संकल्प से मत्स्येन्द्रनाथ का शरीर हिला।

मत्स्येन्द्र नाथ ने आवाज दी—"बैंगनाथ! देखो मुझे कौन छेड़ता है। ध्यान नहीं करने देता।"

फिर वह चुप हो गये मगर समाधि लग कैसे सकती थी। एक प्रबल संकल्प शक्ति बड़े वेग से काम कर रही थी।

मत्स्येन्द्र नाथ ने फिर आवाज दी--"इसने तो मेरे हृदय पर आक्रमण कर दिया। बैंगनाथ! क्या तुम कहीं चले गये हो।"

बैंगनाथ ने उत्तर दिया—"महाराज! महारानी महेश मति जी आपके दर्शन को आई हुई हैं। मैं उपस्थित हूं। कहीं चला नहीं गया।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने आखें खोलीं। वह लाल भभूका हो रहे थे। नन्दी विमला, चन्दा और मैं चारों स्त्रियाँ सहम गईं।

मैं उनके चरणों पर झुकी—"आपका आना धन्य हो। आपके दर्शन से मेरे पाप कट गये।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने आशीर्वाद दिया--रानी! तुम्हारी जय हो। कहो कैसे आई हो? क्या चाहती हो?"

मैंने निवेदन किया—"समाचार मिला कि आप बाग में

विराजमान हैं। आपसे त्रियाराज को समृद्धिशाली करने की प्रार्थना है।"

मत्स्येन्द्र नाथ जी हंसे—"हम रमते साधु हैं। तुमको क्या सहायता दे सकते हैं। कभी यहाँ कभी वहां। जगह जगह मारे फिरते हैं।"

मैंने कहा—"आपके आशीर्वाद में सब कुछ सामर्थ्य है।"

मत्स्येन्द्र नाथ बोले—"क्या मैंने नहीं कहा कि तुम्हारी जय हो? क्या यह आशीर्वाद नहीं है?"

मैं लज्जित हुई—"भूल हुई। क्षमा कीजिये। अब आप महल में चलिये। वहां दासी के रूप में मैं आपकी सेवा करूँगी। मेरा जन्म सुफल हो जायगा।"

"मैं इस साधु के रूप पर इतनी मोहित होगई थी कि मेरे होश हवास अचानक जाते रहे थे। और महल में चलने की प्रार्थना स्वतः ही मेरे मुँह से निकल गई।"

मत्स्येन्द्र नाथ बोले—"त्रिया राज की रानी पुरुषों के नाम से चिढ़ती है। वह किसी पर पुरुष को किस तरह अपने महल में ठहरायेगी। घृणा और अनुराग एक जगह नहीं रह सकते।"

मैंने फिर उसी बेबसी की दशा में कहा—"आप न पुरुष हैं न स्त्री। आप दोनों से ऊँचे हैं। आपके साथ मुझे घृणा नहीं सकती।"

मत्स्येन्द्र नाथ खिलखिला कर हंसे—"फिर मैं क्या कहूं?"

इसका उत्तर मुझसे नहीं बन आया। यदि शक्ति कहती हूं तो शक्ति स्त्री है और उनको पुरुष कहने से शक्ति का अनादर होता है। मैंने गलती की कि उन्हें पुरुष और स्त्री से ऊँचा कर दिया क्योंकि शक्ति मेरा इष्ट थी। इष्ट से ऊँचा कौन हो सकता है। यह शब्द भी यों ही मुँह से निकल गये थे।

विमला बोली—"मुझे कोई सहायता नहीं दे सकता। मैं कहूँ भी तो क्या कहूँ। अन्दर ही अन्दर हृदय जल रहा है। उदासी छाई है। न खाने में स्वाद न पीने में। दिन ज्यों त्यों काम काज में कट जाता है। रात को करवटें लेती रहती हूँ। स्त्री शायद स्वाभाविक रूप से इस काम के लिये नहीं बनाई गई जो हम आप सब स्त्रियों ने ले रक्खा है।"

मैं हैरान हो गई—"अब असल बात बता। व्यर्थ समय नष्ट न कर।"

विमला का दिल भर आया। नेत्रों से आसू निकल पड़े। पांव पर गिरी। रो रोकर हिचकियां लेने लगी।

विमला ने अन्त में कहा—"मैं सिद्धाँत से गिर गई। आप से क्या छिपाऊँ। लाख संयम करती हूँ मगर विवश हूं। बेंगनाथ ने मेरे दिल का मुझसे छीन लिया। मैं अब वह विमला नहीं रही। या तो मैं पुरुषों के नाम से घृणा करती थी या अब उलटी दशा है।"

मैं प्रसन्न हुई। एक से दो अच्छे होते हैं। जिस रोग में मैं ग्रसित हूँ वही रोग विमला को भी है और नहीं तो दोनों मिल कर सलाह तो करते रहेंगे।

मैंने कहा—"अच्छा किया तू ने मुझे स्पष्ट बता दिया। मेरी भी यही दशा है। मेरा मन इस मत्स्येन्द्र नाथ पर आगया, अब हम दोनों सोच समझ कर इन रहस्यों की गुत्थियां सुल- झायेंगी। मगर सावधान! किसी तीसरी स्त्री को इसकी जान- कारी न होने पावे अन्यथा हम दोनों की हंसी होगी और बद- नामी होगी।"

विमला ने स्वीकार किया—"मगर उपाय क्या है जिससे इन योगियों को जाल में फंसाया जाये।"

मैंने कहा—"मैं स्वयं इसी चिन्ता में हूँ।"

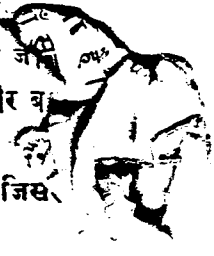

विमला बोली-"यह योगी हैं। इनको अपने चित्त वृत्तियों पर काबू है। यह सरलता से हमारे हाथ न आयेंगे। यदि तनिक भी हमारे अन्तरीय भावों को ये जान गये तो क्या आश्चर्य कि बिना कहे सुने चले जाँय।"

मैंने कहा-"विश्वास रख। अब वह कहाँ जा सकते हैं। पिंजड़े में फंसे हुये पक्षी सरलता से बाहर नहीं निकल सकते।"

बिमला बोली—"मैं आज तीन दिन से बेंगनाथ पर मोहन मंत्र कर रही हूं मगर उस पर कोई प्रभाव नहीं। बेंगनाथ तो मेरी ओर देखता भी नहीं। इन पर जादू नहीं चल सकता। यह जिस सुगमता से शहर में प्रवेश हो गये उसी सुगमता से जा भी सकते हैं। उनकी रोक थाम करना कठिन है।"

मैंने सोचा कि मैं स्वयं यह क्रिया मत्स्येंद्रनाथ पर कर रही हूँ मगर उन पर बाण नहीं चलता। या तो मुझे दावा था कि शेर को एक दृष्टि से देख लूं और वह बस में आजाये और या यह दशा है कि योगा पर तनिक भी तो प्रभाव नहीं होता। कहीं यह स्वयं जादूगर न हो जो एकान्त में बैठा मेरे मंत्र के प्रभाव को उलट देता हो।

मैंने कहा—"तेरी बात झूठ नहीं ज्ञात होती; लेकिन आदमी क्या नहीं कर सकता। फिर स्त्री के सामने पुरुष की स्थिति ही क्या है। इनके फाँसने के हजारों ही उपाय हो सकते हैं।"

विमला ने कहा-"मैं भी उहें सुनूं।"

मैं थोड़ी देर तक चुप रहकर बोली-"अभी तो मैं मोहन मंत्र का अनुष्ठान कर रही हूँ। यदि इससे कार्य सिद्ध नहीं हुआ तो उन्हें अपनी सेवा से राजी करूगी, रोऊँगी, मुस्कराऊँगी, हाव भाव दिखाऊँगी। जब मेनका परी ने विश्वामित्र जैसे

तपस्वी को पथ भ्रष्ट कर दिया तो क्या मैं मत्स्येन्द्र नाथ पर और तू बेंगनाथ पर काबू न पा सकेगी। प्रकृति ने स्त्रियों के हाथ में सहस्रों हथियार दिये हैं। जिस तरह मैंने राज काज में हजारों स्त्रियों से काम लिये हैं वैसे ही इस समय चित्त के हजारों भावों को उभार कर इस योगी पर आक्रमण करूँगी और वह अवश्य मेरे माया जाल में फंस रहेगा।"

विमला मुस्कराई—"कहीं लेने के बदले देने न पड़ जांय। यदि इन्हें ज्ञात होगया कि उन पर मंत्रों का प्रभाव डाला जा रहा है तो वह उन्हें उलट भी तो सकते हैं। उस समय क्या होगा।"

मैं हंसी—"हम उन पर और भी अधिक मोहित हो जायेंगी। इस में लाभ हैं। खरबूजा चाहे छुरी पर गिरे या छुरी खरबूजे पर गिरे, परिणाम तो एक ही होगा।"

विमला समझ गई और उसके मन को विश्वास होगया।

मैंने कहा—"यदि पांच स्त्रियां साथ मिलकर अमल (साधन) करें तो शीघ्र प्रभाव होगा मगर मैं यह रहस्य नन्दी को बताना नहीं चाहती। अच्छा जो कुछ हो सकेगा मैं आप ही करूंगी और तू भी इसी क्रिया (मोहन मंत्र) में लगी रह। देखना है किस को पहिले विजय प्राप्त होती है। हम ने जब मनीपुर के लाखों मनुष्यों को हरादिया तो क्या यह वश में न आयेंगे?"

विमला बोली—"वह और बात है और यह और बात है।"

मैंने पूछा—"यह क्या है? नियम तो एक ही है। काम करने के ढंग चाहे विभिन्न हों।"

विमला ने कहा—"इस काम में तो काम रूप निवासी स्त्री पुरुष सब का ख्याल शामिल था और संगठित ख्याली

धार समुद्र की लहरों के समान हैं। वह चाहे तो क्षण मात्र में दुनियाँ को डुबोदे। इस के अतिरिक्त न्याय हमारी ओर था और राजा घन्श्याम दास अत्याचार करने पर उतारू था। शुभ संकल्प में शक्ति और अशुभ विचार में दुर्बलता रहती है। तीसरी बात यह है कि इधर स्त्रियों को पूरी शक्ति दिखानी थी। इन का साहस बढ़ा हुआ था। उधर के पुरुष हमें स्त्री समझ कर घृणा करते थे। सामना करने के योग्य नहीं समझते थे। वह तो आप ही निर्बल होरहे थे। यदि आपने विजय पाली तो क्या हुआ!"

मैं इस कथन से प्रभावित हो गई—"तू सच कहती है। इसके सच होने में तनिक भी संदेह नहीं है। तू बड़ी समझदार स्त्री है। फिर क्या किया जाय?"

विमला बोली—"क्या कहूँ मैं स्वयं सोच रही हूँ। यह दोनों ही बाल ब्रह्मचारी हैं। उन को अभी तक स्त्री से काम नहीं पड़ा। इन पर बिजय पाना बड़ा कठिन है। छोटी आयु की लड़कियों को हजार काम शास्त्र की बातें सुनाओ वह क्या समझेंगी। उन्हें अब तक न स्त्री पुरुष की पहिचान है और न वह स्त्री पुरुष के व्यवहार का ज्ञान रखते हैं।"

मैं हंसी—"यह बच्चे तो नहीं हैं। पढ़े लिखे समझदार क्या ग्रंथों के पढ़ने से इन्हें स्त्री बिषय का ज्ञान न हुआ होगा। क्या ऐसे संस्कार इनमें नहीं हैं? यह व्यर्थ बातें हैं। जब किसी में किसी तरह का संस्कार होता है तो वह उसी संस्कार के प्रभाव में आकर अच्छा या बुरा बन जाता है। तू चिन्ता न कर। यदि मंत्र शास्त्र हार गया तो जादू का प्रभाव हमारे होठ, जुबान आँख और हाथ पाँव में तो है। स्त्रियां जब दृष्टि रूपी कटार चलाती हैं पुरुषों का हृदय टूक टूक हो जाता है।

मुस्कराना, अकड़ना, इठलाना, इशारा करना, आखें दिखा कर चुरा लेना प्रकृति माता ने आप ही स्त्रियों को सिखा रक्खा है। पुरुष बल से, शेर पंजे से और विष अपने प्रभाव से मारता है मगर स्त्री हंस खेल कर पुरुष का गला दबोच लेती है। स्त्री की लटें वह जंजीरें हैं कि जिन में फंसा हुआ पुरुष कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। इन लटों को तुम क्या समझती हो। यह काले नाग हैं जिन के डसे का मंत्र नहीं है। फिर चाप लोसी और प्रार्थना तो कहीं नहीं गई है। हजारों ही उपायों से इन्हें सज्ज बाग दिखाया जा सकता है।"

विमला के चित्त को ढाढस हुई। बोली—"खेल के मैदान में हमें देखना है कि खेत किसके हाथ आता है और यह दोनों ऊँट किस करवट बिठाये जाते हैं।"

मैंने कहा—"तू अपने पंछी को गिरफ्तार करने का उपाय कर। रातों रात बैठ कर मंत्र के साधन से काम रख। मैं अपने शिकार की ताक में रहूँगी।"

विमला चली गई और उस दिन से हम दोनों साधन में लग गये। एक ख्याल के अतिरिक्त और कोई विचार चित्त पर प्रभावित न होने पाया, यहाँ तक कि राज्य के काम में गफलत होने लगी। नन्दी बेचारी अकेली इन कर्त्तव्यों का पालन करने लगी।

चौथा प्रकरण

मोहन मन्त्र का परिणाम

मोहूं नर के चित्त को, मोहन मंत्र के जाप।
जो नहिं मोहे नार से, तो पावे संताप॥

विमला अपने उद्देश्य में शीघ्र सफल हुई। बेंगनाथ प्रायः उससे वार्तालाप करने लगा। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि किस हद तक वह उसके प्रेम फांस में फंसा था और अथा शिकारी के फंदे में जकड़ने की शक्ति अधिक थी या कम थी, फिर श्री गणेश तो हो ही गया मगर मुझे तनिक भी सफलता नहीं मिली। मैं प्रातः सायं मत्स्येन्द्र नाथ की सेवा में हाजिर रहती। वह ज्ञान ध्यान की बात सुनाया करते लेकिन काम की बात एक भी नहीं। जब विमला ने सात आठ दिन के पश्चात् मुझसे कहा कि बेंगनाथ पर किस अंश तक उसका जादू चल गया तो मुझे न केवल अचंभा हुआ किन्तु ईर्ष्या उत्पन्न हुई। यह लड़की मुझ से भी बढ़ गई और मैं असफल रह गई। कहने को मैं मंत्र शास्त्र की आचार्य गुरु हो गई थी मगर यहाँ चेला बाजी मार लेगया। गुरु गुड़ ही रहा और चेला शकर बन गया। लेकिन मैंने द्वेष और घृणा के भाव को छिपा रक्खा ताकि वह सहभेदी बनी रहे और मेरी कमजोरी से परिचित न हो।

मैं सोचने लगी। अन्त में असफलता का कारण क्या है! क्या मेरा चित्त एकाग्र नहीं है अथवा मैं सिद्धि शक्ति को खो बैठी हूँ। सम्भव है राज्य की जिम्मेदारी का विचार रोड़ा बन कर चित्त को एकाग्र न होने देता हो अथवा दूसरे विचारों का आक्रमण हुआ करता हो। वायु के झोंके जब तक बहते रहते रहते हैं झील का पानी गति मान रहता है। जब वायु नहीं चलती उस समय वह थम जाता है। थमे हुये जल में वृक्षों की छाया दिखाई देती है। चलायमान जल की यह दशा नहीं होती। राज्य के कारबार ने ही मुझे इस अवस्था को पहुंचाया होगा। दूसरों को तो केवल अपनी अपनी चिन्ता रहती है राजा को सारे देश की चिन्ता करनी पड़ती है। एक सिर और हजार

सौदा। फिर विचार एकाग्र भी हो तो कैसे हो? यह रहस्य विमला की सफलता और मेरी असफलता का था। इस के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता। यह सोच कर मैंने अब दूसरे हथियार उठाने का संकल्प किया। किसी प्रकार तो यह योगी योग भ्रष्ट हो। इच्छा हुई कि शीघ्र ही वह मेरी ओर आकर्षित हो।"

योगी को महल में आये हुये पंद्रह दिन हो चुके थे। पन्द्रहवें दिन शाम के समय मैं उस की सेवा में उपस्थित हुई। लक्ष्मणा और नन्दी को मैंने काम के बहाने बाहर भेज दिया। विमला और बेंगनाथ संकेत पाकर दूसरे कमरे में चले गये। मैं अकेली रह गई। एकान्त का ऐसा समय राजा और रानियों को कब मिलता है जो दूसरों को साधारण सी बात है। राजे महाराजे उसके लिये सदैव तरसते रहते हैं। लोना ने सच कहा था कि प्रकृति के न्याय की तराजू के पल्ले सदा बराबर रहते हैं। एक की अधिकता दूसरे की कमी को पूरा करती रहती है।

मैंने देखा कि ऐसा समय फिर न मिलेगा। रोती सिसकती और आँसू बहाती हुई उनके चरणों में गिरी।

मत्स्येन्द्र नाथ ने कहा"-महारानी! तुमको क्या कष्ट है?"

मैं चुपकी रही। उन्होंने फिर दया और दर्द के स्वर में पूछा।

मैंने कहा--"आप त्रिकालज्ञ ऋषि हैं। भूत, भविष्यत और वर्तमान सबका आपको ज्ञान है। क्या आप मेरे हृदय की बात नहीं जानते?"

मत्स्येन्द्र नाथ हंसे--"नहीं, ज्ञान तो सदा उस वस्तु का हुआ करता है जिधर मन आकर्षित होता है। जब तक वह उधर न जाय तब तक ज्ञान होना कठिन है। नेत्रों से दृष्टि की वृति जब सूर्य, चन्द्रमा, स्त्री पुरुष, साज व सामान से मिलती है

उसका रूप बन जाती है, तब ज्ञान प्राप्त होता है। पानी की धार नहर से निकल कर जब खेत में पहुंचती है तो क्यारी में पहुंच कर उसका रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार जब योगी की चित्त वृति ब्रह्म से मिलकर ब्रह्माकार हो जाती है तब ब्रह्म का ज्ञान होता है दूसरी तरह यह सम्भव नहीं है। तुम देखती हो कि मैं रात दिन मालिक के ध्यान में लवलीन रहता हूँ। दूसरी ओर वृति नहीं जाती। फिर यदि मुझे दूसरी बातों का ज्ञान हो तो कैसे हो ?"

मैंने रूमाल से आंसू पोंछे—"फिर कुछ मेरी ओर भी भी ध्यान दीजिये।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने कहा—"यह योगियों का नियम नहीं है। वह प्रकृति के विधान को नहीं तोड़ते।

जब तक कोई व्यक्ति अपना हाल इन्हें न सुनाये तब तक वह किसी के मन के हालात जानने के इच्छुक नहीं होते। सिद्धि दिखाने वाले मूर्ख ऐसा प्रयत्न अवश्य करते हैं मगर इसका परिणाम यह होता है कि थोड़े दिनों में सब कुछ खो बैठते हैं और कहीं के भी नहीं रहते।"

मैं घबराई—"तब मेरे मनोरथ पूर्त्ति की कोई सूरत नहीं। गंगा में रह कर मछली प्यासी, कामधेनु को पाकर मनोकामना से निराशा और कल्प वृक्ष की छाया में उद्देश्य में असफलता बड़े आश्चर्य की बात है। दुनिया कहती है 'कदम फकीरां रहे बला।' आप साधु हैं। महल में आपके चरण आगये। यदि मैं असफल हूं तो फिर सिवाय अपने दुर्भाग्य के क्या कहा जाय ?"

मत्स्येन्द्र नाथ दो चार क्षण मौन रह कर बोले—"तुम कुछ कहोगी भी या यों ही पहेलियां बुझाओगी।"

मैं फिर रोने लगी—"नाथ ! मैं मन बचन कर्म से आप

की दासी हूँ। मुझ पर दया कीजिये।"

मत्स्येन्द्र नाथ हंसे—"साधुओं के हृदय में सहानुभूति रहती है। तुम कहो। मैं सुनूं। तब उपाय बताऊँ।"

मैंने कहा—"मेरे हृदय में आग लगी हुई है। वह अन्दर ही अन्दर सुलग रही है। हड्डी, मास, मज्जा जल रहे हैं। यदि मुँह से कुछ कहती हूं तो चिनगारी भड़क उठेंगी, जिह्वा जल जायगी और मुझ पर आपत्ति आजायगी।"

मत्स्येन्द्र नाथ जी हंसे—"कवियों के शब्द सुनने का स्थान कवि सम्मेलन है। यहाँ साधारण बात कहनी चाहिये।"

मैंने कहा—"क्या आपको ज्ञान नहीं है?"

मत्स्येन्द्र नाथ ने कहा—"नहीं, न मुझे ज्ञान है और न मैं तुम्हारे हृदय में प्रवेश करके जानना चाहता हूँ।"

मैंने कहा—"कण को सूर्य की इच्छा है। बूंद को समुद्र की लालसा है।"

मत्स्येन्द्र नाथ बोले—"यह तो बहुत ही अच्छी बात है। जीव में ब्रह्म की जिज्ञासा होना, अंश का पूर्ण से मिलने की अभिलाषा रखना यही तो मानव जीवन का आदर्श होना चाहिये। अन्यथा यह यों ही निरर्थक हो जाता है।"

मैं बड़ी हैरान हुई। यह योगी गाबदू है जो मेरी बात को नहीं समझता और शब्दों के उलट फेर में मेरे भावों का खून कर रहा है। मैंने कमर से कटार निकाली। उसे दिखाकर बोली—"या तो आप एक नजर से मेरी ओर देखिये या मै अपनी हत्या किये लेती हूँ और अबला के मरने की हत्या आप पर चढ़ेगी।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने सुगमता से कटार मेरे हाथ से छीन ली। वह बलवान थे और मैं अबल थी।

मत्स्येन्द्र नाथ बोले—"तुमको अबला कहना मूर्ख का काम

है। जो शक्तिशाली राजा को पराजय कर सकती है उसे अबल कौन कहे। तुम बड़ी बलवान हो।"

मैं निरोत्तर हो गई। मेरी बेवसी का किसको पता था। यह अल्हड़ मस्त और बेखुद साधु मुझे व्यर्थ परेशान कर रहा था। यह तो सम्भव नहीं था कि वह मेरे आँतरिक भाव से परिचित न हो गया हो। यों ही टाल मटोल कर रहा था।"

मैं रोती हुई पाँव पर गिर गई—"नाथ! मुझे अपनी दासी बनाइये। मेरे जन्म को सुफल कीजिये अन्यथा मैं न लोक की हूंगी न परलोक की। धोबी की कुतिया न घर की न घाट की।"

मत्स्येन्द्र नाथ हंसे—"बस इसी बात के लिये तुम प्राण देती हो। मैं तुमको दासी बनाऊँगा। तुमको ब्रह्म विद्या सिखाऊँगा और तुम्हारा जन्म सुफल हो जायगा।"

अंधेर हो गया। दीवाने से काम पड़ा जो न तो समझता है न समझने का प्रयत्न करता है। और समझाने पर अलूल जलूल बकता है।"

मैंने पूछा—"क्या अब तक भी आप नहीं समझे?"

मत्स्येन्द्र नाथ ने उत्तर दिया—"नहीं, जब तक तू स्पष्ट न कहेगी, मैं क्या समझूँगा और क्या समझ सकता हूं।"

मैं बोली—"महल में रह कर राज कीजिये।"

मत्स्येन्द्र नाथ हँसा—"यह स्वीकार नहीं। तुम्हारा राज तुमको मुबारिक। किसी और के लिये यह दान उपयुक्त होगा। मुझे तो यही अवस्था प्रिय है। मैं राज के लालच में अपनी स्वतंत्रता नहीं दे सकता। हाँ, यदि तुम यही चाहती हो तो बेंगनाथ में अब तक होश का माद्दा शेष है, तुम उसे राज देदो। वह खुशी से स्वीकार कर लेगा और तुम मेरे साथ योग की कमाई करो।"

मैं क्या कहती! चुप चाप मुंह की ओर देखने लगी। यह

कैसा पुरुष है जिस पर न जादू का प्रभाव है न मेरा दाव पेच काम करता है। क्या मैं खुल खेलूं ! और साफ साफ कहदूं। लेकिन जब इसे एक बड़े राज तक का लालच नहीं तो मुझे कैसे स्वीकार करेगा। फिर भी मैंने मन को दृढ़ किया। अब जो चाहे सो हो प्रयत्न अवश्य करना है। सफलता और असफलता भगवती के हाथ है।"

मैं बोली—" मुझे अपना बनाइये। मेरे साथ रहिये और जो संतान आप से मुझे मिले वह इस राज गद्दी की उत्तराधिकारी हो।"

मत्स्येन्द्रनाथ ने जोर से कहकहा मारा कि महल का कोना कोना गूंज उठा। विमला और बेंगनाथ ने सुना। अचंभित होकर कमरे में आये।

मत्स्येन्द्र नाथ ने कहा—" तू ने पहाड़ खोदा और रत्न के बदले कंकड़ निकाला। यदि मैं इस प्रार्थना को अस्वीकार करूं तो तू क्या करेगी ?"

मैंने आखें क्रोध से लाल की। विमला और बेंगनाथ का बिना आज्ञा अंदर चले आना बुरा लगा।

मैंने कहा—" महाराज ! आप इन के सामने मुझे अधिक अपमानित न करें।"

मत्स्येन्द्रनाथ बोले—" नहीं रानी नहीं ! मै तेरा अपमान नहीं करना चाहता। जो करेगी तू आप करेगी। मगर क्या मुझे अधिकार है कि अपने साथी से राय लेलूं।"

मैं चुप रही।

विमला ने अपनी अज्ञानता से सब बातें बेंगनाथ से कह दी थीं।

बेंग नाथ आप ही बोल उठा—" नाथ ! मैं तो दल दल में फंस गया। आप ब्रह्म ज्ञानी हो। आप की दृष्टि में योग और

मोक्ष दोनों समान हैं। मैं हर हालत में आप का सेवक हूँ ?"

मत्स्येन्द्र नाथ हंसे—"यही राय है ?"

बेंगनाथ—"हां, यही राय है। रानी की प्रार्थना स्वीकार न करना उसकी मृत्यु का कारण होगा।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने कहा—"रानी! तू अब प्रसन्न होजा। मुझे अस्वीकार नहीं है।"

मैं हंसकर पांव पर गिर पड़ी। आज मेरा भाग्य चमक उठा। मैं सब स्त्रियां में अपने आप को अधिक भाग्य शाली समझती हूं।"

दूसरे दिन मैंने नन्दी से राय ली। बहुत तर्क बितर्क के बाद वह राजी हुई। मत्स्येन्द्र नाथ सामाजिक विध विधान के मान ने वाले थे। शास्त्रोक्त विवाह की रीति पर जोर देने लगे। मैंने विश्वामित्र को बुलाया। उसने कन्या दान दिया। यज्ञ रचाया गया। खुशियाँ मनाई गईं और मत्स्येन्द्र नाथ के साथ मेरा विवाह होगया। मैं उन की संगत से बड़ी प्रसन्न थी। विमला का विवाह बेंगनाथ के साथ हुआ। उसका कन्या-दान करन ने दिया। दुनियां विचित्र स्थान है। या तो स्त्रियों की सभा में विमला ने स्वयं ही कन्यादान की रीति को तोड़ने का प्रस्ताव पेश किया था या आज स्वयं उसने इस प्रथा की पाबन्दी पर चूँ तक नहीं की। गरज बुरी होती है। गरज मन्द बाबला हो जाता है। गरज जो न चाहे कर दिखाये।

एक साल बाद मेरी कोख से कुश का जन्म हुआ और विमला के पुत्र का नाम लव रक्खा गया।

चौथा भाग समाप्त

पांचवां भाग

प्रथम प्रकरण

आपत्ति का श्री गणेश

सुबह के बाद शाम आती है। रंज आया खुशी जो जाती है। जो वस्तु अपनी स्थिति से गिर जाती है लोग उससे घृणा करते हैं। जो व्यक्ति अपने सिद्धान्त के विरुद्ध काम करता है वह स्वयं अपने आपको घृणा की दृष्टि से देखने लगता है। हाथ की उँगलियों के यही नाखुन हैं। जब तक वह उँगलियों से सम्बन्ध रखते हैं सुन्दर समझे जाते हैं और उनसे बचाव नहीं किया जाता। लेकिन उन्हें काट कर फेंक दो फिर हाथ लगाने को भी जी नहीं चाहता। पुरुष की मूँछ के बाल कभी कभी पानी पीते समय मुँह में चले जाते हैं। कौन उन्हें बुरा समझता है! लेकिन तनिक उन्हें कतरदो, क्या वह फिर मुँह में जाने योग्य समझे जायेंगे! कभी नहीं। नाखुन और बाल दोनों ही मनुष्य की सुन्दरता के आभूषण हैं मगर उसी समय तक जब तक वह अपनी जगह पर रहते हैं। लेकिन जहां अपने स्थान से हटे फिर कुचल कर मिट्टी में मिल जाते हैं और ऐसे अपवित्र समझे जाते हैं कि कोई उन्हें छूता तक नहीं।"

"सिद्धान्त से गिरे हुये मनुष्य की भी यही दशा होती है। बल्कि वह उनसे भी अधिक बुरा हो जाता है। सिद्धांत चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसके पालन से मनुष्य सम्मानित होता है और सिद्धान्त का उल्लंघन करना या भंग करना अपमान और दुर्गति के गड्ढे में डाल देता है। आदमी ने जो नियम अपने

जीवन के लिये बनाये हैं मरते दम तक उन पर आरूढ़ रहना चाहिये। तब तक उसके मान सम्मान में बट्टा न आयेगा। अन्यथा उसके आचरण में अपयश का धब्बा लग जायगा जिसका धोना महा कठिन होगा।''

मैं त्रिया राज की महारानी हूं। मैंने स्त्रियों को शिक्षा दी कि स्त्री पुरुष से हर बात में श्रेष्ठ और उच्च होती है। स्त्रियों ने इस बात को ग्रहण कर लिया, लेकिन क्या मैं इस पर स्थिर रह सकी? नहीं। मत्स्येन्द्र नाथ ने मेरे अभिमान के सिर को नीचा कर दिया और रानी होकर मैं उसकी गुलामी का दम भरने लगी। विमला इस प्रकार होश हवास खो बैठी कि रात दिन सिवाय बेंगनाथ की सेवा और प्रेम के उसे और किसी का ख्याल तक नहीं रहता था। आदमी फिर बिना सोचे समझे क्यों शरमिन्दगी उठाये। यदि मैं समता के मार्ग पर चलती तो यह परिणाम कभी न होता। ऊँचे चढ़ी और फिसल कर मुँह के बल ऐसी गिरी कि सारा अभिमान क्षणमात्र में जाता रहा। मैंने बुरा उदाहरण स्थापित किया। राजा और मंत्री दोनों से संयम न हो सका। जिन पुरुषों की ओर से पहिले स्त्रियों को घृणा दिलाया करती थी, वह हमारे हृदय रूपी सिंहासन पर बैठ कर हम पर शासन करने लगे। यह ठीक है कि योगियों ने कभी भूलकर भी राज काज के विषयों में हस्तक्षेप नहीं किया लेकिन उनको हम पर विजय मिलगई। इससे इंकार हम कैसे कर सकती हैं और क्रियात्मक [अमली] उदाहरण ने देश की समस्त स्त्रियों को चौकन्ना बना दिया और पुरुषों का घरों में फिर वैसा ही आदर होने लगा। कहावत प्रसिद्ध है 'यथा राजा तथा प्रजा'। जिस असली ध्येय की पूर्त्ति के लिये हमने इतना प्रयत्न किया वह व्यर्थ रहा और दिन प्रति दिन हमारे भाव निर्बल और साहस गिरता गया।

आह ! कोई व्यक्ति इतना ऊँचे चढ़ कर न गिरे। धनी होकर भिकारी और सम्मानित होकर शर्मिन्दगी न उठाये। इससे मृत्यु हजारों गुना बढ़कर है।

कुश और लव में वैसा ही प्रेम था जैसा मुझमें और विमला में था। हम दोनों एक दूसरे की सह-भेदी थीं। वह मेरे गुण और अवगुण को जानती थी। मुझे उसकी भलीबुरी बातों की जानकारी थी। हमारी सन्तान भी हमारे पारस्परिक प्रेम का नमूना सिद्ध हुई।

दोनों किसी दिन शहर में सैर करने गये। मथुरा बिन्द्रावन से रासधारी आये हुये थे। कहीं उनका तमाशा देख लिया। नौ नौ वर्ष की आयु थी। जब घर लौटे तो महल में रासलीला कराने की इच्छा प्रगट करने लगे।

मैंने कहा—"कुश तुम राज कुमार हो। ऐसे तमाशों के देखने की तुम्हें क्या आवश्यकता है। तुम प्रजा के तुच्छ मन बहलाव के विचार को चित्त से दूर करदो।"

कुश बोला—"माता जी! बड़ी ही अच्छी लीला होती है। तुम देखोगी कैसा आनन्द आता है। विश्वास न हो तो लव से पूछ लो।"

मैंने विमला के लड़के से प्रश्न किया—"कहो क्या देखा है?"

लव स्वयं नाच रंग का प्रेमी था। बोला—"कंस वध, कृष्ण का मुरली बजाना, गोपियों का नृत्य, सबका सब देखने योग्य है।"

मैंने विमला से पूछा—"क्या महल में रास लीला कराई जाय?"

विमला ने उत्तर दिया—"इसमें प्रत्यक्ष में हानि तो कोई नहीं प्रतीत होती। रासधारी दूर देश से आये हैं। इनाम

पायेंगे तो आपका नाम दूर दूर तक पहुँचायेंगे और आपकी उदारता का सहरा देश देश में पहुंचेगा।"

नन्दी उपस्थित थी। मैंने उसकी ओर संकेत किया।

नन्दी ने कहा—"जब तक यह ज्ञात न हो कि यह रास धारी कौन हैं इन को महल में आने की आज्ञा न होनी चाहिये। भेष बदल कर प्रायः दूसरे देशों के गुप्तचर राजाओं के दरबार में आया जाया करते हैं। उनका दूर रखना ही उचित है।"

मैं हंसी—"नन्दी! तू प्रधान क्या बनाई गई कि बात बात में डरती है और साधारण बातों में भय किया करती है।"

नन्दी ने गंभीरता के स्वर में उत्तर दिया—"निवेदन कर देना मेरा काम है। मानना न मानना आपका अधिकार है। राज का धर्म योग का साधन है। राजा को योगी की तरह हर बात में चौकन्ना रहना चाहिये। मैं मना तो नहीं करती।"

मैं मुस्कराई—"चूंकि तू प्रधान है तेरे गुप्तचरों ने कुछ तो सूचना दी होगी। क्या यह रास धारी किसी राजा के कर्मचारी हैं?"

नन्दी बोली—"मैं अपने काम से कभी अचेत नहीं रहती। इन में एक व्यक्ति बड़ी गम्भीर वृति का है और सब साधारण हैं। इस का हाल अभी तक किसी पर प्रगट नहीं हुआ कि वह कौन है और किस ध्येय से रास लीला करता फिरता है। उस में साधारण व्यक्तियों के गुण दिखाई नहीं पड़ते। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने किसी विशेष ध्येय को दृष्टि में रखकर भेष बदल रक्खा है।"

नन्दी हम सब स्त्रियों में अधिक बुद्धि मान थी! वह कभी कोई ऐसा काम नहीं करती थी कि जिस का परिणाम लज्जा जनक हो। यदि मैं उस की राय पर चलती और विमला को इतना सिर न चढ़ा लेती तो अपमानित न होना पड़ता मगर

भाग्य में तो कुछ और ही लिखा था। मैं नन्दी की राय पर हमेशा हंसी उड़ाती रही। वह देश के सब स्त्री पुरुषों के हालात से जान कारी रखती थी। विदेश का कोई आदमी आया नहीं कि उसका चित्र उस के पास पहुँचा नहीं। वह एक एक का हाल जानती थी। उसकी स्त्रियां विदेशियों के रहन सहन की देख भाल से कभी बेसुध नहीं पाई गईं।

विमला और लक्ष्मणा तो बार बार धोखा खा गई लेकिन राजनीत में कोई स्त्री पूरी उतरी है तो वह केवल नन्दी।"

मैं खिलखिला कर हँसी—"नन्दी! तुझे नींद कैसे आती होगी। स्वप्न में भी राजनीति का भूत तुझे सताता होगा।"

नन्दी ने कहा—"जो कार्य मुझे करना है उसे पूर्ण रूपेण करूंगी। यही मेरा धर्म है। मुझे गहरी नींद कमतर आती है। घर में भी किसी से कोई बात पूर्ण रूपेण नहीं कहती। सदा टाल देती हूँ। ऐसी ही टेव पड़ गई है। मैं स्वयं आश्चर्य में हूँ कि क्या हो रहा है मगर विवशता है। बिना सोचे किसी को उत्तर नहीं देती।"

मैं हंसी-"रास धारियों का आना साधारण सी बात है। मथुरा वृंदाबन के लोग त्रिया राज्यमें उत्पात नहीं मचा सकते। उन्हें क्या पड़ी है कि इतनी दूर से आकर झगड़ा टंटा करें। यह रुपया कमाने के लिये घर से निकले हैं।"

नन्दी बोली-"यह सच है और सच होगा मगर मैं अपने स्वभाव को क्या करुं। सम्भव है जिस आदमी का मैंने उल्लेख किया है वह किसी पड़ौसी देश का गुप्तचर हो और उसने रास धारियों को अपने काम का साधन बनाया हो।"

मैंने कहा-"संदेह न करो। लड़के मन बहलाव के इच्छुक हैं। इनका चित्त प्रसन्न होने दो।"

नन्दी ने उत्तर दिया—"सरकार की आज्ञा ! मुझे पालन करना है।"

दूसरे ही दिन इन सब रास धारियों के बुलाने की राय हुई।

दूसरा प्रकरण

रास लीला

खेल खेल में काम कर, खेल खेल व्यवहार।
यह जग झूठा खेल है, मन में सोच विचार॥

साँय काल होते ही महल के एक लम्बे चौड़े दालान में फ़तीलसोज, दीपक और फानूस आदि जलाये गये। मैंने मंत्राणियों को बुलाया। बेंगनाथ और मत्स्येन्द्र नाथ को निमंत्रित किया गया। रासधारी आये। कृष्ण लीला प्रारंभ की। कंस की सभा, देवकी और वासदेव का विवाह, नारद का राजा के दरवार में आकर विष्णु के विचार की सूचना देना, कंस का देवकी पुत्रों का एक एक करके वध कर देना, कृष्ण का जन्म लेना, बासदेव का जमुना पार करके नन्द यशोदा के घर जाना और कृष्ण को उसकी गोद में लिटा कर यशोदा को कन्या महामाया को उठा लाना, कंस के हाथों से देवी का छूट कर आकाश में उड़ जाना और कह जाना कि विष्णु और जगह पैदा हो गये। देवकी और वसुदेव का छुटकारा, नन्द के घर में कृष्ण जन्मोत्सव की बधाई, कृष्ण की माखन चोरी, पूतना बध, बल्कासुर का बध, नाग नाथन, गोप और गोपियों का प्रेम, ब्रह्मा और इन्द्र को कृष्ण का आश्चर्य में डालना, गोबरधन पर्वत को नाखुन पर उठाना, अन्त में कंस का कृष्ण को बुलाना और उनके हाथ से मारा जाना। इन

सब घटनाओं के पश्चात् कृष्ण का संदीपन ऋषि के आश्रम में चला जाना, यह सब लीला ऐसे विचित्र ढंग में दिखाई गई कि सब को अचंभा हुआ।

संदीपन ऋषि वह व्यक्ति थे जिससे नन्दी को डर था। लम्बी लम्बी दाढ़ी, अंगारों की तरह रक्त नेत्र, जटाजूट, देह सुन्दर, गौर वर्ण, कानों में कुंडल। मुझे भी उसे देखकर भय हुआ। मैंने मन में कहा—"नन्दी सच कहती थी। यह व्यक्ति कभी लीला दिखाने वाला नहीं हो सकता। इसका रंग ढंग और तरह का था।"

इस के अतिरिक्त मैंने स्वयं कई बार देखा। उस की दृष्टि मत्स्येन्द्र नाथ और बेंगनाथ की ओर थी। वह उन्हें बार बार देखा करता था।

अन्त में जब कृष्ण संदीपन के आश्रम में चले गये, लीला समाप्त कर दी गई। लड़के बड़े प्रसन्न हुये।

दूसरी रात युधिष्टर के राज सूय यज्ञ, जरासिंधु, शिशुपाल, चीरहरण, द्रोपदी का अपमान, कृष्ण की सहायता, जुआ के खेल में पान्डवों का बनवास, महाभारत का युद्ध, कृष्ण का सारथी पना, राजाओं का बध, भीष्म का घायल होना, दुर्योधन बध, और राज के बाद युधिष्टर का भीष्म के पास धर्म सीखने की नीयत से जाने का दृश्य दिखाया गया। आज के दिन वह व्यक्ति भीष्म पितामह के भेष में उस भयानक रूप में आया था कि उसे देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैं कभी किसी से भयभीत नहीं हुई थी। यदि डरी तो केवल उस व्यक्ति की सूरत से।

लीला समाप्त होने पर मैंने देखा कि मत्स्येन्द्र नाथ के मुंह पर हवाइयां उड़रही थीं और बेंग नाथ इस तरह काँपता था जैसे बिल्ली को देख कर चूहा और भेड़िये को देख कर बन्दर।

मत्स्येन्द्रनाथ बोले—"गोरखनाथ ! तुम यहाँ कैसे आये ?"

गोरख नाथ ने कहा—" जहां गुरु वहाँ चेला। मुझे कानपथ की जुबानी ज्ञात हुआ कि आप त्रिया राज में पधारे हैं। चरणों के दर्शन की इच्छा यहाँ खेंच लाई।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने पूछा—" यह स्वांग क्यों बनाया ?"

गोरख नाथ ने उत्तर दिया—" असल और नकल सदा साथ रहते हैं। प्रकाश और छाया का मेल है। इस के अतिरिक्त आप तक पहुंचने का कोई उपाय समझ में नहीं आता था।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने प्रश्न किया—" गुरु का क्या हाल है?"

गोरख नाथ बोले—" कुछ न पूछिये। रानी मीनावती ने उनको बुला भेजा। चेली हुई। उसके पुत्र गोपीचन्द को एक पंडित के बहकाने से समाधि अवस्था में जीवित गढ़वा दिया। मुद्दत तक उन्हें बिल्कुल खबर नहीं मिली। अन्त में मैंने सुना। वहाँ गया। उन्हें कब्र से जीवित निकाला।

मत्स्येन्द्र नाथ ने फिर पूछा—"तू और कहां गया था ?"

गोरख ने कहा–"पंजाब देश के स्यालकोट शहर में गया। वहाँ लोना चमारी शाल बाहन की रानी ने पूरन नामी राज कुमार अपने सौतेले बेटे के साथ अनुचित सम्बन्ध करना चाहा था। पूरन सिद्धान्त वाला था। उसके फंदे में नहीं फंसा। उस निर्दोष पर रानी ने तौहमत लगाई। राजा ने जल्लाद के अर्पण किया। मैंने कूट नीति से उसे बाल बाल बचा लिया। अब वह नैपाल और भूटान में धर्म और नाथ पंथ का प्रचार कर रहा है।"

मत्स्येन्द्र नाथ बोले"—गोरख तू धन्य है। तूने गुरु और चेले दोनों के प्राण बचाये।"

गोरख ने कहा—"मेरे भाग्य का तारा तो उसी समय चमक उठा था जिस समय मेरा सिर आपके चरण कमल से

स्पर्श कर गया था। धन्य हो आप।"

मत्स्येन्द्र ने पूछा--अब तू यहां क्यों आया है ?"

गोरख ने उत्तर दिया—"महाराज को उज्जैन से आये समय होगया। आपके शिष्य दर्शनों के लिये तरसते हैं। यह मेरे आने का मन्तव्य है।"

मत्स्येन्द्र नाथ बेंगनाथ से बोले--"कहो क्या राय है ?"

बेंगनाथ दुखी हुआ। "महाराज चले जायें। मैं तो अब यहाँ से जाने वाला नहीं हूँ। स्त्री व पुत्र को छोड़ कर कैसे कहीं जाऊँ। मैं यहाँ बहुत प्रसन्न हूं। ऐसा आनन्द जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था।"

गोरखनाथ की आखें क्रोध से लाल हो गईं--"मूर्ख ! तू महा पतित है। याद रख ऐसा दंड दूँगा कि जन्म जन्म रोता रहेगा।'

मत्स्येन्द्र नाथ बोले—"गोरख ! यह महल है। यह महेश मती त्रिया राज की रानी है। यह कुश उसका राजकुमार है। और तेरा भाई है। यहां कठोरता नहीं करनी चाहिये।"

गोरख लज्जित हुआ। मेरे चरणों में सिर झुकाया। कुश को गले लगाया और सिर पर दया का हाथ फेरा।

मैंने कहा--"गोरख नाथजी ! मैं आपके नाम से बहुत समय से परिचित हूँ। दर्शन कभी नहीं किया था। आप मुझे काँटों में न घसीटिये। लोना चमारी आपकी शिष्या है। आप मेरे गुरू के गुरू हैं।"

गोरख बोले--"तू मेरी माता है और मैं इसी तरह तेरा बेटा हूँ जिस तरह यह कुश है। तुझको नमस्कार है। माई ! यह मैं प्रण करता हूँ कि जब तुझ पर कोई आपत्ति आये मुझे याद करना। मैं तेरी सेवा से कभी भूल न करूँगा।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने कहा-"गोरख ! अब तू क्या चाहता है ?"

गोरख बोले--"महाराज ! यहां से चलें और बेंगनाथ को भी साथ रक्खें। यह मेरी हार्दिक इच्छा है।"

मत्स्येन्द्र नाथ बोले--"मैं तैयार हूँ। बेंगनाथ तू भी चल।"

मैं बड़ी व्याकुल हुई। बेंगनाथ की दशा कुछ न पूछिये। उसके नेत्रों से आँसू निकल पड़े मगर गोरखनाथ अत्यन्त ही निर्दयी था। किसी की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

मैंने मत्स्येन्द्र नाथ के पांव पकड़े--"नाथ ! इस दासी को अपने चरणों से अलग न कीजिये। यह जीवन आपका है। आप जीवन देकर अब मेरा जीवन न लीजिये।"

मैं फूट फूट कर रोने लगी।

मत्स्येन्द्र नाथ ने कान में झुककर कहा—"रानी ! गोरख बड़ा सिद्ध महात्मा है और तुझसे अधिक हठीला है। इसके सामने मेरी कुछ न चलेगी। धीरज रख। क्या आश्चर्य तुझसे शीघ्र मिल रहूँ।"

यदि इस समय हठ करेगी तो गोरख हम दोनों को परेशान करेगा।"

मैं दुखी हुई। विवश चुप रही। विमला के होश उड़ गये। कुश व लव रोने लगे। रंग में भंग हो गया। मत्स्येन्द्र नाथ का संकेत पाकर मैंने रासधारियों को इनाम देकर विदा किया और गोरखनाथ मत्स्येन्द्र नाथ और बेंगनाथ को साथ लेकर उस समय महल से चल दिये और रातों रात राजधानी से दूर होगये। मैं जादूगरनी थी मगर न पति को रोक सकी और न गोरखनाथ पर मेरा जोर चला।

तीसरा प्रकरण

विवशता में ईश्वरीय सहायता

विरह जलंती देखकर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद को छिड़ककर, जलती लई बचाय॥

"आज पति के वियोग का चौथा मास है। नहीं मालूम वह कहाँ और किधर चले गये। पुरुष बड़े बेवफा होते हैं। मैं व्याकुल हूँ। राज काज के कर्त्तव्य अब चित्त को प्रसन्नता नहीं देते। मैं भोग विलास में पड़ गई और अब इसका परिणाम यह हुआ कि त्रिया राज्य की व्यवस्था बिगड़ रही है।"

सिक्किम और भूटान के राजे दोनों मिल कर लड़ने के लिये सीमा पर आगये। उन्हें मेरी दुर्बलता का पता लग गया है और मैं सचमुच दुर्बल हूँ। क्या करूँ क्या न करूँ, कुछ कहा नहीं जाता। या तो मैंने गुप्तचर विभाग को इतना बढ़ावा दिया था कि पड़ौसी राजाओं के समाचार मुझे मिला करते थे या अब गफलत का शिकार होकर आलसी बन गई हूँ। मन ही मन में रोती हूँ। कोई सच्चा हमदर्द नहीं मिलता, जिससे खुलकर हृदय का हाल सुनाऊँ। दुनियां में कोई किसी का दर्द शरीक नहीं। आदमी अकेले आता है और अकेला ही कष्ट भोगता है। लाख कोई कहे कि मैं तुम्हारा साथी हूँ मगर कौन किसका साथी है। यह बातें ही बातें हैं।

हाय गोरख! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था कि तुमने मेरे बसे बसाये घर को उजाड़ दिया। हाय मत्स्येन्द्र नाथ! तुम कैसे कुसमय में आये कि मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा। इरावती पहले लाघव की याद की श्मशान बन चुकी थी। उसे तो मैं बिलकुल ही भूल गई थी। शोक ने उसकी राख के ढ़ेर को व्यर्थ कुरेदा और उस पर मत्स्येन्द्र नाथ आसन जमा कर बैठ

गये और मुझे बेवस बनाकर निर्दयता से अलग भी होगये। फिर तुम यहां आये ही क्यों थे ? जिसके शिष्य गोरख जैसे सिद्ध हों उसे त्रिया राज और स्त्रियों के समारोह में आने की आवश्यकता कब थी। तुम आये। यह बुरा किया या भला इस से प्रयोजन नहीं लेकिन आकर चला जाना घोर कष्ट दायक है। मैं कैसे धैर्य्य धरूं। जीतेजी मुझे विधवा और कुश को को अनाथ बनाकर चल दिये। न तुम ने संतान का ध्यान दिया न स्त्री का ! तुम कैसे पुरुष हो ! पत्थर हृदयी क्या तुम को ऐसा ही चाहिये था ?"

मैं आदि से अंत तक अपने जीवन के पहलुओं पर इस प्रकार विचार करती रही। बार बार मुझे मत्स्येन्द्र और गोरख ने चलते समय कहा था कि आवश्यकता के समय पर आऊँगा। अब इससे अधिक आवश्यकता कब होगी। सम्भव है कल ही शत्रु का आक्रमण हो। मैं तो युद्ध को तैयार नहीं हूँ। इसी चिन्ता में आँख झपक रही थी कि बाँदी ने द्वार खट-खटाया।"

मैंने पूछा—"कौन है ?"

उत्तर दिया गया—"रेवती।" मैंने पूछा—"क्या चाहती है ?"

रेवती बोली—"मत्स्येन्द्र जी आये हुये हैं और इसी समय आप से मिलना चाहते हैं।"

मुर्दा जी उठा। छूटी हुई नाड़ी में गति आगई। मन की आशा पूरी हुई। झट पट द्वार खोला। मत्स्येन्द्र नाथ अन्दर आये। फूट फूट कर रोती हुई पाँव पर गिरी। "निर्दयी पत्थर हृदय ! मुझे कत्ल करके अब तू मेरे सरहाने मुर्दा लाश को देखने आया है !"

मत्स्येन्द्र हंसे—"मुझे कहीं एकान्त में छिपादे। गोरख

मेरे पीछे खोज में आरहा है।"

मैंने उन्हें एक कोठरी में बन्द करके दरवाजा लगा दिया। बांदी ने कहा कि गोरख भी आगये। उन्हें बुलाया। आते ही उन्हों ने मेरा पांव छुआ।"

मैंने कहा—"गोरख नाथ! तुमने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। मैं तुम को कभी क्षमा न करूंगी।"

गोरख बोले—" मातायें ऐसा ही कहा करती हैं मगर बेटे का मुंह देखा नहीं कि क्रोध को भूल जाती हैं। मैं इस समय शिकायत सुनने नहीं आया। तेरा ही काम कर रहा हूँ। सिक्किम और भूटान के राजे सीमापर आगये हैं। तू उन से युद्ध करने के योग्य नहीं है।"

मैंने कहा—" सच है। फिर क्या करना चाहिये?"

गोरख ने उत्तर दिया—" कुछ भी नहीं। कुश को अभी बुला। मैं उस के सिर पर राज मुकट रक्खूं गा और उसे राजा बनाऊंगा।"

मैं या तो व्याकुल थी या मुस्कराने लगी। कहाँ राम राम कहाँ टें टें! गोरख ने कहा तर्क वितर्क न करो। मेरे पास समय नहीं है। भूटान सिक्किम के राजे यद्यपि प्रत्यक्ष में बौद्ध हैं मगर मेरे शिष्य हैं। जब तक मैं हूं तब तक तुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता और न ऐसा किसी में साहस ही है।"

जान में जान आई।

मैंने प्रश्न किया—" क्या त्रिया राज समाप्त कर दोगे?"

गोरखनाथ ने उत्तर दिया—"नहीं। त्रिया राज ऐसा ही रहेगा।"

मैंने पूछा—" फिर कुश को गद्दी क्यों देरहे हो?"

गोरख ने कहा—" गुरु की मौज ऐसी ही है।"

मैंने कुश को बुला भेजा। विमला और नन्दी भी आईं। लड़का गहरी नींद में चूर था। आखें मलते हुये आया और आते ही गोरख के पाँव से लिपट गया। कहने लगा—" बड़े

भाई ! तुमने घोर अत्याचार किया। मुझे अनाथ बना गये।"

गोरख हंसे और उसे ढ़ारस दिया। उसी समय उस के सिर पर स्त्रियों के सामने शाही ताज पहिना कर कहा—"तू आज से देश का राजा है और शिव भगवान की तेरे सिर पर सदैव छाया रहेगी। विश्वास रख।"

फिर गोरखनाथ की आज्ञा पाकर बांदियां दौड़ीं। विश्वमित्र और करन को जो अब तक नजर बन्द थे बुला लाईं।

गोरख नाथ ने उनसे कहा—"तुम फिर अपने २ पद पर नियत किये जाते हो। आज से कुश तुम्हारा राजा है। अब कभी बेवफाई न करना। महारानी की आज्ञा मानना। राजा नाबालिग है। यह उसकी जगह राज करेगी। कल से क्षत्रियों को सेना में भर्त्ती करना आरम्भ करो। करन पुरुषों की सेना का अधिकारी रहेगा। विमला स्त्रियों की सेना की देख भाल करेगी। उप प्रधान नन्दी होगा। दरबार में स्त्री पुरुष दोनों ही पदाधिकारी रहेंगे ताकि सब मिल कर काम रूप देश को दृढ़ बनायें। दोनों पक्षों के अधिकार समान होंगे ताकि किसी तरह की शिकायत न हो।"

मैं विवश थी। गोरख का जादू मुझ पर कुछ इस तरह चल गया था कि मुझे मुँह खोलने का साहस नहीं होता था। यह विचित्र आदमी है निर्भय शेर जैसे भाव, साधू होकर महल में निडरता से चला आना और क्षणमात्र में इस प्रकार का प्रबन्ध करना इसी का काम था। मैं तो शायद वर्षों में भी ऐसा न कर सकती। उसकी दूर दर्शिता की मन ही मन में सराहना करने लगी।

जब यह हो चुका, गोरख ने सबको बिदा कर दिया।

गोरख ने कहा—"गुरू महाराज कहां हैं ?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। मत्स्येन्द्र आप ही दरवाजा खोल कर निकल आये। "गोरख तू मुझे चैन नहीं लेने देता।"

"नहीं महाराज ! मैं आपको उज्जैन पहुँचाये बिना न न रहूँगा।" "मैं तैयार हूँ।"

"चलिये फिर शीघ्रता कीजिये।"

गोरख नाथ उसी समय गुरू को और मुझको नमस्कार करके चले गये। ऐसी गुरू भक्ति और गुरू की आज्ञा पालन! सांस लेने का भी साहस नहीं किया और साथ ही यह कठोरता कि इन्हें विवाहिता पतिनी से प्रथक कर रहे हैं। मेरी समझ में यह बातें नहीं आईं। गोरख और मत्स्येन्द्र दोनों ही मेरे लिये कठिन रहस्य और समस्यायें हैं।

मत्स्येन्द्र नाथजी ने मुझसे कहा—"सुनो सुन्दरी ! न कोई किसीका पति न कोई किसी की पतिनी है। यह संसार का व्यवहार स्वप्न का खेल है। तूने मुझसे कहा था कि चरणों में लेकर मेरे जन्म का सुधार करदो। वह समय आज आया है। सृष्टि में पुरुष और स्त्री की हैसियत समान है। कोई किसी से बढ़कर नहीं है। यह तेरी गलती थी कि तू पुरुषों के विरुद्ध घृणा का बीज बो रही थी। इसका परिणाम बहुत बुरा होता और अन्तमें तुझे पछताना पड़ता। पुरुष और प्रकृति दोनों संसार में मिलजुल कर खेलते रहते हैं। तराजू के पल्ले बराबर रक्खे गये हैं। पुरुष स्त्री के सहारे है और स्त्री पुरुष के आश्रित है। "बिन गृहनी घर भूत निवासा। बिन गृहना गृहणी मन त्रासा॥" अब तुझे इसका पूरा पूरा ज्ञान होगया। जब तक अनुभव नहीं होता, आदमी अपनी हठ पर अड़ा रहता है। इस सम्बन्ध में मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। तूने त्रिया राज की नींव डाली। बहुत अच्छा किया। गोरख ने जो इस समय प्रबन्ध किया है वह बहुत उचित है। इसमें काट छांट न करना। तेरा जीवन सुख से व्यतीत होगा अन्यथा तुझको बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। गोरख तेरे शत्रु

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

का सेना में गया है। कल वह अपने अपने देशों को लौट जायेंगे और कभी आक्रमण न करेंगे। आदमी ईश्वर तक की आज्ञा नहीं मानता लेकिन शिष्य गुरु आज्ञा को कभी नहीं टालते। भारत भूमि पवित्र भी है यहाँ सुधार और भलाई का काम साधु ही किया करते हैं। इस कारण मैं यहां आया था और गोरखा नाथ ने बड़ी योग्यता से इस कार्य को पूरा कर दिया। वह सिद्ध योगी है। नाथ पंथ वाले मुझे भूल जायेंगे। पहाड़ी क्षेत्रों के निवासी उसके नाम के सम्मान में गोरखे कहलायेंगे। यह न मेरी भविष्य वाणी है किन्तु गोरखा के लिये सच्चे हृदय से आशीर्वाद है। वह मुझे सब शिष्यों से प्यारा है।"

मेरी हैरानी की हद हो गई। हठी शिष्य गुरु को भोग विलास से बंचित कर रहा है और वह उसे आशीर्वाद दे रहा है।"

मैंने प्रार्थना की—"मेरा जन्म किस तरह सुफल होगा।"

मत्स्येन्द्र नाथ बोले—"इस जादू के विचार को हृदय से दूर करदो। शिव की भक्ति कर और मैं तुझे साधन और अभ्यास की ऐसी सुगम युक्ति बताऊँगा कि तू राज का काम करती हुई भी इसे सायं प्रातः कर सकेगी और मालिक की भक्ति की कमाई करके सुगमता से निष्काम जीवन व्यतीत करेगी। मरने के बाद निर्वाण पद को प्राप्त कर लेगी।"

मत्स्येन्द्र नाथ ने मुझे उसी कमरे में बैठाकर सुरत शब्द योग का सुगम साधन सिखाया। उस समय मेरी समाधि लग गई। आँख खोली तो मत्स्येन्द्र नाथ को नहीं पाया। लेकिन अब मुझे दुख नहीं हुआ। उसकी मूर्ति हर समय मेरे अन्दर विराजमान रहती है और मैं प्रसन्न हूँ। गोरखनाथ के प्रबंध से त्रियाराज को बड़ी दृढ़ता प्राप्त हुई। न शत्रु का भय रहा न पुरुष स्त्रियों में द्वेष है।"

अब यह मेरी दशा है।

कहानी का परिणाम

गुरु - "तू आगया ?"

शिष्य—आज बारहवें वर्ष का अन्तिम दिवस है। न आता तो क्या करता।"

गुरु—"अब तू मुझसे प्रश्न कर और मैं उत्तर दूंगा।"

शिष्य—"अब आवश्यकता नहीं रही। आखें खुलगईं।"

गुरु—"किस प्रकार ?"

शिष्य— 'जिस प्रकार आप भोग भोगते हुये मोक्ष अवस्था में रहते हैं। मुझे तो उसी के समझने का ख्याल था।"

गुरु—"तूने अपनी आखों से देख लिया ?"

शिष्य—"हाँ भगवन ! देख लिया।"

गुरु—"तब तेरा कल्याण हो और शिव भगवान आशीर्वाद दें कि तेरा नाम सदा रहे।"

शिष्य गुरू के चरणों पर गिरा। शिष्य गोरख नाथ थे और गुरु मत्स्येन्द्र नाथ थे। गोरख नाथ ने प्रसन्न होकर उस समय यह शब्द गाया, जो गोरख पंथी नाथों को याद है !

जैसे कमल रहे जल माहीं, ज्यों दरपन पर छाहीं।
तैसे ज्ञानी जग में रहता, भूल भरम मन नाहीं॥
भोग में मुक्त, मुक्ति में भोगी, ज्ञान दशा में बरते।
भव सागर यक अगथ पंथ है, ज्ञान नाव चढ़ तरते॥
बध मोक्ष दोऊ मन की रचना, समझे कोई निःज्ञानी।
बंध छोड़ क्यों मुक्तिको धावे, वह तो नहीं अभिमानी॥
ब्रह्मा कार हो मन की वृति, ब्रह्म अखंड कहावे।
ब्रह्म भवति नर ब्रह्मविद् ही है, यह उपनिषद् सुनावे॥
बंध में मोक्ष मोक्ष में बन्धन, बंद्ध मोक्ष दोऊ ज्ञानी॥
कहे गोरख जब ऐसी अवस्था, सोई पद निरवानी।

❀ समाप्त ❀

बन्दना

जीव चितावन आये राधा स्वामी। बार बार तिन चरन नमामी॥
जीव शरण गहले उपदेशा। सहजहि जावे सत गुरु देशा॥
जहां नहिं काल कर्म नहि माया। नहिं जहां गगन अकाश न छाया॥
बिन जल बूंद पड़े जल भारी। नहिं तीखा मीठा नहिं खारी॥
बिन बादल जहां बिजली चमके। बिना चन्द्र रवि जोति दमके॥
वेद कतेब की गम नहि सो सतगुरु दरबार।
राधास्वामी की दया, मिटे द्वन्द संसार॥
नहि वहाँ कर्म न धर्म कहानी। नहिं वहाँ दुख: न लाभ न हानी॥
गूंगा बोले मधुरी बानी। पंगुल चढ़े शैल निरबानी॥
आवा गवन का संशय मेटे। सुन्न समाधि में निस दिन लेटे॥
देखे अद्भुत विमल विलासा। निरखे अद्भुत अजब तमाशा॥
ऋतु बसंत चहुंदिशि रही छाई। कमल फले वर्षा भर लाई॥
बिना पंथ का गैल है, बिन बस्ती का देश।
बिना नैन दृष्टा बने, यह सतगुरु उपदेश॥
हैरत हरत हैरत होई। हैरत रूप धरा उन सोई॥
रंग रूप रेखा से न्यारा। बिन घोड़ा वाहन असवारा॥
जापर कृपा गुरु की होई। सत परमारथ पावे सोई॥
निराकार निः देव निरूपम्। अगम अलख अद्वैत अनूपम्॥
सोई गुरु का रूप कहावे। बिन गुरु दया समझ नहिं आवे॥
यह मत अगम अगाध है, क्या कोई बरने आय।
कोई गुरु मुख गति पावती, गुरु जब होंय सहाय॥
जीव दुखी बिलपे दिन राती। माया हृदय दया नहिं आती॥
काल कर्म का विकट पसारा। कौन जीव को देय सहारा॥

बार बार भरमे चौरसी। काल गले बिच डाली फाँसी॥
कोई तीरथ कोई बरत उपासा। कोई नियमी कोई रहे उदासा॥

सोर न पाया भक्ति का, प्रेम प्रीति की रीति।
काल निर्दयी मारिया, जम किस का है मीत॥

तब राधास्वामी दया उमगाई। धर गुरु रूप दिया शरनाई॥
मन में राखूं दृढ़ विश्वासा। गुरु मेरी पूर करें सब आशा॥
मान न माँगूं नहिं धन दामा। माँगूं चरण शरण सत नामा॥
जीव काज तुम जग में आये। निराकार नर रूप दिखाये॥
इष्ट दिया ऊंचा अरु भारी। तुम हो बन्धु मित्र हितकारी॥

गुरु पद में यह बन्दना, जीवहि लेहु चिताय।
राधास्वामी की दया, फंसे न आप जग आय॥

धन्यवाद

श्री डाक्टर लक्ष्मण राव जी—राधास्वामी अस्पताल निजामाबाद ने १६०) रु० शिव की सहायतार्थ भेजे हैं। उन को सच्चे हृदय से धन्यवाद है। मालिक उनका कल्याण करे और उनकी मनोवृति को ऐसा ही बनाये रक्खे।

मैनेजर

स्वतंत्रता दिवस १५-८-६१ पर 'दयाल फकीर' का संदेश

(ले० परम सत दयाल फकीर साहब होशियारपुर)

कर्म भोग या मौज मालिक आधीन कलम उठा रहा हूँ।
और इस योम आजादी के दिन अपना संदेस सुना रहा हूँ॥
कोई सुने या न सुने इस का नहीं मुतलक खयाल।
जगत कल्याण के लिये अपना अनुभव बता रहा हूँ॥

भारत वासियो! आज देशको स्वतंत्रता मिले १४ वर्ष होगये। भौतिक रूप से देश ने काफी उन्नति की है किन्तु मानसिक और सदाचार रूप से अत्यन्त पतन है। उसको समझ बूझ वाले सब लोग समझते हैं।

कांग्रेस के सिद्धान्तों में कोई विशेष नुक्स या दोष नहीं मगर उस के अनुयायिओं ने अपने अमली जीवन से जनता के दिलों से अपना प्रभाव कम करा लिया है। क्या यह झूठ है? भारत वर्ष की प्राचीन संस्कृति में सब से अधिक महत्व धर्म को दिया गया है। यह धर्म ही मानव संतान का सहायक हो सकता है।

सब से आदि धर्म या प्राचीन संस्कृति वैदिक धर्म है। यह वैदिक धर्म हमारे शारीरिक और मानसिक जीवन को समृद्धि शाली, सुखी और फारिगुलवाल रखने में सहायक हो सकता है।

दूसरे जितने धर्म हैं सब इसी वैदिक धर्म की शाखायें हैं और इसी के सिद्धान्तों को विभिन्न धर्मों ने दूसरे रूप और शब्दों में अपनाया है।

मगर यह आदि संस्कृति आर्य धर्म या वैदिक धर्म क्या शिक्षा देता है इस को यह वैदिक धर्म के अनुयायी और प्रचा-

रक स्वयं नहीं जानते हैं और न बाअमल या क्रियात्मक हैं। शास्त्रों के अनुसार इस सृष्टि को बने करोड़ों वर्ष होगये। उस समय प्रारम्भिक शिक्षा या संस्कार जो बच्चों को दिया जाता था यह है :—

ओ३म भू भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी महि धियो योनः प्रचोदयात्।

यह मंत्र है, राय है. उपाय है। इस का अर्थ यह है कि जाग्रत स्वप्न सुषुप्त से परे जो सावित्री (सूर्य्य या प्रकाश) है, उस के दर्शन करो। वह तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक होगा। स्पष्ट शब्दों में शुद्ध बुद्धि (सहीउल दिमाग़ी) का होना ही असली और सच्चा प्रारम्भिक धर्म कहलो।

वर्तमान बुद्धि युग के लोग चूंकि शुद्ध बुद्धि वाले नहीं हैं कह सकते हैं कि शुद्ध बुद्धि के लिये अंतरीय सावित्री (प्रकाश) के दर्शन की क्या आवश्यकता है? मेरा उत्तर यह है कि मानव जीवन प्रकाश (Light) से बनता है। यदि शरीर में गर्मी है तो जीवन है वर्ना वह मुर्दा है। जिस प्रकार यह पृथ्वी सूर्य्य का दूसरा रूप है और इस पर सूर्य्य व अन्य तारागणों के प्रकाश से जीव जन्तु उत्पन्न होते हैं, इसी तरह यह सूर्य्य स्वयं किसी दूसरे सूर्य्य के आधीन है, इससे बना है जिस को वर्तमान साइंस सिद्ध करती है कि इस सूर्य्य के परे भी इस से करोड़ों गुने बड़े अनेक सूर्य्य हैं।

हमारे जितने भी शारीरिक मानसिक और आत्मिक भाव हैं सब के सब इन सूर्य्यों और तारागणों की गर्मी और किरणों के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः इन भावों को कंट्रोल में (संयम) और सही रखने के लिये जब तक हम इस ज्योति स्वरूप (सावित्री) जिस से यह सब प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, से न मिलेंगे, हम में शुद्ध बुद्धि आ ही नहीं सकती; क्योंकि

मनुष्य की चित्त वृति (तवज्जह) सदा इन भावों में बहती रहती है। इस लिये शुद्ध बुद्धि के लिये मनुष्य को स्थिर अवस्था में आना अत्यन्त अनिवार्य्य है। चूंकि जन साधारण ऐसा नहीं करते हैं इसलिये उनको ऐसे पुरुष की शिक्षा और उस पर आचरण करने की आवश्यकता है जिस से उसका जीवन आनन्द दायक और श्रेष्ठ रह सके। इसलिये आदि वैदिक धर्म या प्राचीन संस्कृति में आदेश है कि ऐसे पुरुषों की हिदायतों पर चलो जो स्वयं पूर्ण रूपेण शुद्ध बुद्धि वाले हैं। यही ऋषि मत गुरुमत कहलाता है। इसी सिद्धान्त पर महा पुरुषों आदर मान सम्मान की प्रणाली मौजूद है, यद्यपि अब यह प्रणाली क्रियात्मक रूप से निरर्थक है।

सम्भव है कोई प्रश्न करे कि मैं हिन्दू धर्म का पक्ष ले रहा हूँ मगर ऐसा कदापि नहीं है। अभिप्राय तो केवल अपने अंतर में सावित्री (प्रकाश)के दर्शन से है, चाहे कोई भी व्यक्ति करे। यह आवश्यक नहीं कि वह किसी विशेष भाषा के मन्त्र पढ़े। यह मन्त्र तो राय हैं तजवीज हैं। इस प्रकाश में अपने अन्तर प्रवेश करने या दर्शन करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है चाहे वह किसी भी जाति का हो हिंदू हो, सिक्ख हो, मुसलमान हो या कोई और। स्पष्ट शब्दों में सिवाय ऐसे पुरुष के जो इस प्रकाश या सावित्री का दर्शन करने वाला हो और कोई शुद्ध बुद्धि वाला हो ही नहीं सकता।

अब यह डैमोक्रेसी बनाने वाले या देश के कानून बनाने वाले कौन हैं? क्या यह इस सावित्री या प्रकाश के साधक थे हैं? इसका उत्तर पाठक स्वयं विचार करलें। यदि यह थे होते तो देश आज मुद्दत से सुखी होता मगर इतना न करने पर भी देश में अशान्ति है।

इसलिये कर्म भोग वश या मौज आधीन मैं इस स्वतन्त्रता

दिवस पर कहे जारहा हूँ कि जब तक देश की बागडोर को संभालने वाले, चलाने वाले ऐसे महान पुरुष न होंगे, भारत में शान्ति का आना सम्भव नहीं है। भौतिक उन्नति तो हो जायगी मगर जीवन केवल भौतिक नहीं है।

विरोध की परवाह न करता हुआ विवश होकर लिख रहा हूं कि गलतफहमी न रहे। शुद्ध बुद्धि वाला कौन है? वह जो हर प्रकार के भावों पर काबू रख सकता है। जहाँ यह भाव काम, क्रोध, लोभ मोह और अहंकार आदि प्रबल हैं वहाँ मालिक के मिलने की वासना, मुक्ति की इच्छा, योग साधन के आनन्द में रहने की चाह भी भाव ही हैं। जो व्यक्ति जीवन भर इनमें बहता है पूर्ण तया शुद्ध बुद्धि वाला नहीं है। मैं ऐसा रहा हूं और निज अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ इसलिये कोई धार्मिक और पाँथिक पक्षपाती पुरुष भी शुद्ध बुद्धि वाला नहीं हो सकता। जो पुरुष इन सब प्रकार के भावों पर काबू रख सकता है दूसरे शब्दों में सहज समाधि में रहता है वही सच्चे अर्थों में शुद्ध बुद्धि वाला है और ऐसे पुरुष को पूर्ण पुरुष कहते हैं और वही सच्चा पथ-प्रदर्शक होकर शुद्ध बुद्धि रखता हुआ, मनुष्य के भावों का अध्ययन करता हुआ उनकी चित्त वृति को श्रेष्ठता की ओर लाने की सम्मति दे सकता है। आचरण करना दूसरों का काम है।

थोड़ा सी शुद्ध बुद्धि जो मुझे प्राप्त हुई उसके आधार पर यद्यपि मैं जानता हूं कि न 'नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' मगर चूँकि मैं आशावादी ख्याल का हूँ, निराशा वादी नहीं हूँ, मैं सदा यह चाहता रहता हूँ कि कोई शक्ति उत्पन्न हो प्राचीन संस्कृति जिसका मैं उल्लेख कर रहा हूं, को अपना देश की बहतरी करदे।

अब सन् १९६२ ई० में चुनाव होने जा रहे हैं। प्रथ